प्रकाशक

रामचन्द्र शुक्ल

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

२/३ चित्तरञ्जन ऐवेन्यू साउथ

कलकत्ता

मुद्रक

बजरंगबली 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी।

सद्गुणी सुशीला

पहला परिच्छेद

यह कौन ?

क उसी समय जब एक भयङ्कर स्वप्न देखकर सुशीलाकी नींद खुल गयी थी, एकाएक उसके कमरेकी एक खिड़की जोरकी आवाजके साथ खुल गयी। चौंककर सुशीलाने उधर ही देखा। एक भयानक चेहरा, जिसकी लाल आँखें अँगारेकी तरह चमक रही थीं, टकटकी लगाकर उसी की ओर देख रहा था।

सुशीला काँप उठी। यह कौन है ? इस भयंकर रात्रि में यह कौन आ पहुँचा ! उसने पलटकर पलंगपर दृष्टि डाली। यह क्या ! देखा कि उसके पतिदेव भी नहीं हैं। इतनी रातमें उसे अकेली छोड़, वे कहाँ चले गये !

सुशीलाने दासीको पुकारना चाहा पर मुँहसे आवाज नहीं निकली। सारे शरीरमें पसीना हो गया। इसी समय खिड़कीके बाहर से ही उस मूर्त्तिने गम्भीर स्वरमें कहा—"सुशीला! यह देखो!"

इतना कह, उसने अपना लम्बा काला हाथ खिड़की के छड़ों के भीतर डाल दिया। सुशीलाने कमरेमें जलते हुए लैम्पकी हलकी रोशनीमें देखा—उसके हाथमें एक लम्बा-चौड़ा लिफाफा है,—जिसपर उसका ही नाम लिखा हुआ है। उस मूर्त्तिने लिफाफा जोरसे सुशीलाकी ओर फेंक दिया। लिफाफा उसकी पलंगपर आ गिरा। इसके क्षण भर बाद ही वह विकराल मूर्त्ति गायब हो गयी।

सुशीला अब भी भयसे काँप रही थी। अब भी मानों वे भयंकर आँखें उसकी ओर देख रही थीं। बड़ी कठिनतासे और बहुत देर बाद वह किसी तरह सम्हली। इसके बाद उसने झपटकर वह खिड़की बन्द कर दी।

लिफाफा पलंगपर पड़ा था। उसपर बड़े-बड़े लाल अक्षरोंमें सुशीलाका नाम लिखा हुआ था। वह खड़ी-खड़ी कुछ देर तक उस लिफाफेकी ओर देखती रही। इसके बाद साहसकर उसने दासी को पुकारा, पर दासी गहरी नींदमें पड़ी थी।

सुशीला पलंगसे उठ खड़ी हुई। उसने सोचा—प्राणनाथ कहाँ चले गये? वहीं खड़ी-खड़ी कुछ देर तक वह कुछ सोचती रही। इसके बाद उसने स्वयं लालटेन उठा ली और साहस बाँध, समूचा घर ढूँढ़ आयी, पर कहीं भी उसके पतिदेव न दिखाई दिये।

यद्यपि वह विकराल चेहरा अब भी उसकी आँखोंके सामने घूम रहा था, परन्तु फिर भी वह अपने हृदयको दृढ़कर दरवाजेके पास जा पहुँची। उसने देखा कि उसका पुराना नौकर रामा बड़ी शान्तिसे एक ओर सो रहा है। उसने उसे न जगाया। दरवाजा भीतरसे खुला था। इतनी रातमें यह दरवाजा कैसे खुला? सुशीलाने दरवाजा खोलना चाहा, पर बाहर से ताला बन्द था। उसने भीतरसे दरवाजा बन्द कर दिया और उसी तरह दबे पाँव अपने कमरेमें लौट आयी।

आते ही उसकी दृष्टि फिर उस लिफाफेपर जा पड़ी। इस बार उसने लिफाफा हाथमें उठा लिया। खोल डाला। पर खोलते ही जिस चीजपर उसकी दृष्टि पड़ी—उसने उसे और भी चकित, विस्मित तथा स्तम्भित कर दिया।

यह एक रमणीका चित्र था। गजबकी खूबसूरती थी। एक ही दृष्टिमें सुशीलाने देख लिया—चित्र की रमणी असाधारण सुन्दरी है। परमात्मा की सृष्टिका एक आकर्षक रत्न है।

सुशीला भी कम सुन्दरी नहीं थी। हजारों में एक थी परन्तु न जाने क्यों, इस चित्र की सुन्दरता के आगे उसे अपना सौन्दर्य फीका-सा जान पड़ने लगा। बहुत देर तक सुशीला उस रमणीकी सुन्दरताको देखती रही। इसके बाद यह जाननेकी चेष्टासे कि यह रमणी कौन है, उसने फिर लिफाफेमें हाथ डाला। शायद कोई पत्र भी हो। हाँ, वास्तवमें उस लिफाफेमें एक पत्र भी था—पर उसमें इतना ही लिखा था—

"जिसपर तुम अपना सर्वस्व निछावर किये बैठी हो उनसे ही पूछना कि यह स्त्री कौन है ?"

एकाएक सुशीला के हाथसे वह चित्र छूट पड़ा। वह इस तरह कुछ हताश भावसे उस पलंग पर बैठ गयी मानों उसके सरमें चक्कर आ गया हो। इस समय चित्र सीधा उसके सामने पड़ा था; सुशीलाकी दृष्टि उसपर अवश्य थी परन्तु उसका मन किस विचित्र जगतमें चक्कर मार रहा था—यह कौन बता सकता है ?

बहुत देर तक सुशीला चित्रको देखती हुई उसी तरह बैठी रही। इतनी देरमें न जाने वह कितना और क्या क्या सोच गयी। एक सामान्य घटनाने—एक निर्जीव चित्रने—एक अपरिचित हाथने उसके जीवनमें आज वह उथल-पुथल मचा दी जिसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। इस इतने समयमें भूत जीवनके कितने ही चित्र उसके मानस-पटलपर उदय हुए और साथ ही साथ अस्त भी होते गये। यद्यपि अब तक उसे दुःख की हवा न लगी थी, यद्यपि उसके हृदयपर अपने सास-ससुरकी मृत्युके सिवा और कोई दुःखकी चोट नहीं पहुँची थी, वह अपनेको परम सुखी और अपने हृदयेश्वर की प्राणप्यारी समझती थी, वह समझती थी, कि उसके प्राणाधार उसके और केवल उसीके हैं, पर आज इस चित्र और उस काली मूर्त्तिने उसके इस आनन्द-सागरमें विषादकी तरंगें पैदा कर दीं, जिस पर सन्देह और शंका-रूपी हवाके झटके लग लगकर उसे निरानन्दमें परिणत करने लगे। इसी समय बालापन का माता-पिता का स्नेह और वह शिक्षा-दीक्षा उसे याद

आयी। उसे याद आया अपनी माताका यह कथन कि मेरी कन्या रूपमें लक्ष्मी और गुणमें सरस्वती है। वह एकाएक उठकर एक बड़े आइनेके सामने जा खड़ी हुई। उस क़द-आदम आइनेमें उसने देखा—अपने रूपको आज खूब निरख निरखकर देखा और आप ही आप बोल उठी—"नहीं मैं किसीसे भी कम नहीं हूँ, परन्तु फिर प्राणनाथ ......" इतना कहते कहते ही उसका चेहरा मुरझा गया, उसकी बड़ी बड़ी आँखोंसे मानों आँसूके मेह बरसने लगे। वह फिर पलंग पर जाकर बैठ गयी। चित्र को उठा लिया और इस तरह ध्यानसे उसे देखने लगी, मानो उस चित्रसे ही उसका परिचय जाननेकी वह चेष्टा कर रही हो।

कुछ देर बाद उसने वह चित्र एकाएक ज़ोरसे जमीनपर पटक दिया। रूखे स्वरमें बोली—"यही चित्र क्या मेरी गृहस्थी बिगाड़ देगा ? सोनेका संसार मिट्टीमें मिला देगा ?"

वह अपनी दशा सुधारनेकी चेष्टा करने लगी, परन्तु दशा सुधरनेके बदले बिगड़ती ही गयी। ज्यों ज्यों वह सम्हलना चाहती थी, त्यों त्यों उसका हृदय कातर ही होता जाता था, मानो रह रहकर वह मूर्त्ति—उस चित्रकी वह अनुपम सौन्दर्य-मयी रमणी, उससे कह रही थी, कि मैं तेरे प्राणेश्वरको छीन लूँगी।

इसमें सन्देह नहीं कि सुशीला एक बहुत बड़े घरानेकी कन्या थी। उसके माता पिताने जितना ही लाड़-प्यार और आदर मान-से उसका पालन पोषण किया था, उतनी ही अच्छी उसे शिक्षा भी दी थी। सुशीला को आदर्श गृहिणी बनने योग्य सारी शिक्षाएँ देनेके

बाद ही, उन्होंने अच्छा सम्पत्तिशाली धनवान सुशील वर-घर देखकर उसका विवाह किया था और सुशीला भी इस घरमें आकर परम सुखी हुई थी। उसे अपने सास ससुरका जैसा ही स्नेह प्राप्त हुआ था, अपने पतिका भी वैसा ही प्रेम और आदर। आज तक सुशीलाको कभी विपत्तिकी हवा न लगी थी—यही कारण था, कि आज इस आकस्मिक घटनाने उसे इस तरह चंचल और विकल कर दिया। इस धनी परिवारमें रहकर दास-दासियोंसे भरे-पूरे घरमें आकर यदि सुशीलाको दुःखकी कोई हवा लगी थी, तो इतनी ही कि विवाहके कुछ वर्ष वाद उसके सास-ससुरका अचानक परलोक-गमन हो गया। परन्तु इस अवसरपर उसके पति वल्लभदासने प्रेमकी इतनी पराकाष्ठा दिखाई कि माता-पिताका विछोह और सास-ससुरकी मृत्यु वह भूल गयी। आज तक पति-पत्नीमें सन्देह, विवाद या मतभेदका कभी कोई चिन्ह भी न दिखाई दिया। आदर्श गृहस्थकी भाँति वल्लभदासका सदैव कार्यमें लगे रहना और आदर्श गृहिणीकी भाँति सुशीला का गृहराज्य का संचालन करना—यही उनका कार्य था और ठीक ऐसा मालूम होता था मानो दोनों एक दूसरेके प्रेममें मतवाले हो रहे हैं। उसे दो सन्तानें भी हो चुकी थीं; परन्तु भगवानकी दयासे उसने स्वास्थ्य और रूप ऐसा पाया था, कि अभी वह बिल्कुल ही नवयुवती मालूम होती थी। उसी पतिदेव प्राणवल्लभका एकाएक पलंगसे गायब होना और उस विचित्र मनुष्यका आकर चित्र फेंक जाना—ये दोनों ही घटनाएँ इस तरह एकाएक हुईं, कि सदाकी सुखी सुशीला इस घटनासे घबड़ा उठी।

न जाने सुशीला कब तक इन्हीं विचारोंमें लीन रहती कि एकाएक उसे ऐसा सुन पड़ा मानो किसीने दरवाजेका ताला खोला। सुशीला सावधान हो गयी। क्या पतिदेव आ गये ? वह दबे पाँव दरवाजेकी ओर बढ़ी। ठीक उस समय जब वह दरवाजे-पर पहुँची, कोई किवाड़में धक्के दे रहा था, पर बहुत सावधानी से जिसमे कोई सुन न पाये। सुशीला समझ गयी, कि उसके पति ही आये हैं। उसने साहसकर दरवाजा खोल दिया। हाँ, आनेवाला उसके पति वल्लभदास ही थे।

दरवाजा खुलते ही सुशीलापर ज्योंही इनकी दृष्टि पड़ी, वे बोल उठे—"तुम यहाँ!"

सुशीलाने कोई उत्तर न दिया। रास्ता छोड़कर हट गयी। पति के भीतर आने बाद उसने अपने हाथों दरवाजा बन्द किया और तब कमरे की ओर लौटी।

इस समय तक वल्लभदास कमरेमें आ पहुँचे थे। एकाएक उनकी दृष्टि भी पलंगपर पड़े उस चित्रपर जा पड़ी। वे उस चित्र-को उठाकर देखना ही चाहते थे कि सुशीला आ पहुँची।

न जाने क्यों अपनी पलंगपर उस चित्रको देखते ही वल्लभ-दासका चेहरा पहले तो उतर गया, परन्तु फिर तुरन्त ही लाल हो उठा। उन्होंने सुशीलाकी ओर देखकर कुछ कड़ी आवाजमें कहा—"सुशीला! यह चित्र यहाँ कैसे आया ?"

आजतक सुशीलाने अपने पतिका यह कठोर स्वर कभी न सुना था। उनकी यह क्रोध-भरी आवाज सुनकर सुशीला और भी

भयभीत हो उठी। बोली—"आज रातमें एकाएक एक आदमी फेंक गया?"

वल्लभदास की आँखें लाल हो उठीं। बोले—"कोई फेंक गया?"

सुशीलाने नम्र स्वरमें रात्रिकी सारी घटनायें कह सुनायीं। वल्लभदास कुछ देर तक चुपचाप सुनते रहे। इसके बाद उसी तरह कठोर स्वरमें बोले—"तुम जानती हो, यह कौन है?"

सुशीला बोली—"नहीं"—इसके बाद उसने वह लिफाफा और पत्र उठाकर वल्लभदासको दे दिया।

वल्लभदासने वह पत्र पढ़ा। पढ़कर फाड़ डाला। इसके बाद घोर चिन्तामें निमग्न, एक कुर्सीपर बैठ गये। और सुशीला—वह भयसे काँपती हुई दृष्टिसे उनकी ओर देखती हुई एक ओर खड़ी रह गयी।

इस समय सवेरा हो चला था। बाहर किसीने बड़े ही कोमल स्वरमें गाया—

"सबै दिन नाहिं बराबर जात।"

दूसरा परिच्छेद

चित्र-परिचय

इस समय इस साधारणसे गानेने भी सुशीलाके हृदयपर चोट पहुँचा दी। उसका अन्तरात्मा काँप उठा वह घबड़ाकर वल्लभदासका चेहरा देखने लगी, पर वे इस समय घोर चिन्तामें निमग्न बैठे थे। सुशीलाने इनकी ऐसी अवस्था कभी न देखी थी। घबराकर बोली—"क्या हुआ है, आप इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं?"

वल्लभदासने आँखें उठाकर सुशीलाकी ओर देखा, पर कोई उत्तर न दिया, फिर माथा झुका लिया। अब सुशीला-से सहन न हो सका। किसी भारी विपत्तिका भय उसके हृदयमें और भी प्रबल हो उठा। वह वल्लभदासके पास चली गयी और उनके माथेपर अपना दाहिना हाथ रखकर बोली—"आप आज ऐसे क्यों हो रहे हैं? उत्तर क्यों नहीं देते? मेरी कोई भूल हुई है?"

वल्लभदासने झटककर हाथ हटा दिया। रूखी आवाजमें बोले—"तुमसे भूल नहीं हो सकती—भूल मेरी ही है।"

सुशीला कुछ भी समझ न सकी। बोली—"कैसी भूल?"

इस बार वल्लभदासने कुछ क्रोधसे कहा—"मुझे ठीक बताओ-यह पत्र और चित्र भेजनेवाला कौन है ?"

सुशीलाने कुछ दृढ़तासे कहा—"मैं आजतक कभी झूठ नहीं बोली। मैंने जो कुछ कहा है, वह अक्षर अक्षर सत्य है।"

वल्लभदास इतना सुनते ही कुर्सीसे उठकर कमरेमें इस तरह इधर उधर टहलने लगे मानो वे इस समय अपने हृदयका सारा बल लगाकर इस रहस्यको जाननेकी चेष्टा कर रहे हों। उनका चेहरा रह रहकर भाव बदल रहा था और ठीक ऐसा मालूम होता था कि उनके मनमें एक भारी हलचल मची हुई है।

इस समय तक सवेरा अच्छी तरह हो चुका था। वल्लभदासने फिर वस्त्र पहने और सुशीलासे बिना कुछ कहे एक ओरको चल दिये।

सुशीला उसी तरह मन मारे बैठी रह गयी। दास-दासियाँ सभी इस समय तक जाग पड़े थे। आजतक घरमें कभी ऐसी घटना न घटी थी, जिससे किसीको सन्देह करनेका अवसर मिले। अतएव सुशीला कुछ संकुचित-सी होती हुई घरके काममें लगी। रह रहकर उसकी आँखोंमें आँसू भर आते थे, जिन्हें वह मुँह फेरकर पोंछ लेती और दूसरोंकी दृष्टिसे बचानेकी चेष्टा करती थी।

एकाएक निराला देखकर उसका एक पुराना नौकर रामा उसके सामने आ खड़ा हुआ। यह इस घरका एक बहुत ही पुराना आदमी था। अवस्था पचास वर्ष से ऊपर की ही होगी। उसने आते ही पूछा—"आज क्या हुआ है बहूजी, मालिक इस समय कहाँ गये हैं। वे आज नाराज से क्यों थे ?"

सुशीलाने इतना ही कहा—"कुछ नहीं रामा, किसी कामसे गये होंगे।"

रामाने कहा—"बहूजी, मैं इसी घरमें बुड्ढा हुआ हूँ। वल्लभ बाबूको मैंने गोदमें खेलाया है। मुझे मालूम है, कि आपके सो जानेके बाद बाबू रातमें बाहर गये थे। वे हमलोगोंको बिना बताये, बाहरसे ताला बन्दकर बाहर चले गये थे। यदि किसी कामसे गये थे, तो खबर देकर और हमलोगोंको जगाकर क्यों न गये। यह तो कोई सहज बात नहीं है, इसमें कोई भेद है।"

सुशीला उसी तरह चुप रही। रामाकी स्वामि-भक्ति और इस परिवारपर उसका स्नेह सुशीलासे छिपा न था।

सुशीलाको चुप देखकर रामाने फिर कहा—"इतना ही नहीं, चिन्ताके मारे कल रातमें मुझे नींद नहीं आयी है। मुझे मालूम है, कि रात में आप बाबूको खोजती हुई दरवाजे तक आयी थीं। आपने ही दरवाजा बन्द किया और खोला भी। फिर तबसे आप सोयी नहीं हैं। वल्लभ बाबू भी आज कुछ नाराज-से दिखाई देते थे। क्या बात है, मुझे बताइये। यह बम्बई बड़ी विचित्र जगह है, तिसपर बाबूके माथेपर कोई बड़ा नहीं है।"

सुशीला जबर्दस्ती चेहरेपर मुसकुराहट लानेकी चेष्टा करती हुई बोली—"कुछ हो तब तो बताऊँ रामा! मुझे तो कुछ भी खबर नहीं है।"

रामाने चिन्तित स्वरमें कहा—"आप जब कुछ बताना ही नहीं चाहतीं, तब मैं क्या कर सकता हूँ, परन्तु कुछ न कुछ दालमें

काला अवश्य है" कहता कुछ बड़बड़ाता एक लड़केको गोदमें उठा, एक ओर चला गया।

सुशीला कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही। इसके बाद अपने कमरे में आकर बैठ गयीं।

वल्लभदासका इस तरहका व्यवहार सुशीलाके लिये एक नयी चीज थी। वह अपने को सम्हालने की चेष्टा करती थी परन्तु किसी तरह उसका मन न मानता था। रह रहकर उसके मनमे यही प्रश्न उठता था, कि चित्रवाली यह सुन्दरी कौन है तथा उसके पतिदेवसे उसका क्या सम्बन्ध है। उस चित्रको घरमें देखकर वे इतने नाराज क्यों हो गये।

दिनके दस बज गये पर वल्लभदास न लौटे। सुशीला व्याकुल हो उठी। वह सोचने लगी—"क्या सचमुच मैं अपने पतिको खो बैठूँगी ?"

एकाएक एक गाड़ी उसके दरवाजेपर आ लगी। सुशीला चौंक पड़ी, शायद उसके पतिदेव आये हों। परन्तु वल्लभदास का अब तक पता न था। उसके बदले एक स्त्री सुशीलावाले कमरेमें आ पहुँची। सुशीला पहले तो कुछ चौंकी परन्तु तुरन्त ही उसने देखा कि यह तो कोई दूसरा नहीं बल्कि उसकी सहेली शारदा है। शारदा और सुशीलामें बचपनका ही स्नेह था। दोनों अभिन्न-हृदय संगिनी थीं। दोनों की शिक्षा भी एक साथ ही हुई थी। क्योंकि दोनों का ही मकान पास ही पास था। इसके बाद सुशीलाका विवाह वल्लभदाससे तथा शारदा का कोलावाके एक

धनी सेठ आनन्दमोहनसे हुआ और दोनोंका यह नित्यका मिलना बन्द हो गया।

इस विपत्तिके समय एकाएक उसी शारदाको देखकर यद्यपि सुशीलाको कुछ प्रसन्नता हुई, परन्तु भेद खुल जानेके भयसे वह बहुत सावधान हो गयी। उसने शारदाको खातिरसे बैठाया और बोली—"आज तो बहुत दिनोंपर सुधि आयी।"

शारदाने हँसकर कहा—"सुधि आकर ही क्या होता, मैं तो जानती हूँ, कि तुम्हें क्षणभरके लिये भी उनसे छुट्टी नहीं मिलती।"

सुशीला को जबर्दस्ती इसबार हँसना पड़ा। वह हँसकर बोली—"और तुम्हें क्या हमेशा छुट्टी ही रहती है। इसलिये तो इतने दिन बाद दर्शन मिले हैं।"

शारदाने कहा—"हम सभी तीर्थ-यात्राके लिये चले गये थे। सेतुबन्ध रामेश्वर तक की दौड़ हो गयी; परन्तु यहाँ आकर जो समाचार सुने उससे एकबार तुम से मिलना बहुत ही आवश्यक मालूम हुआ, नहीं तो अभी और भी दो चार दिनकी देर होती। वल्लभ बाबू कहाँ हैं?"

सुशीला फिर चौंक पड़ी। कौन सी ऐसी खबर है जिससे मुझसे मिलना आवश्यक हो गया। पतिदेवका तो कोई समाचार नहीं है। उस चित्रवाली रमणीकी तो कोई लीला नहीं है।

सुशीला एकटक दृष्टिसे शारदाका चेहरा देखने लगी। उसके चेहरेपर आशंकाके चिह्न प्रगट होने लगे।

शारदाने कहा—"मेरा मुँह क्या देख रही हो? तुम्हारे घरमें

सब कुशल है न ? कोई नयी बात तो नहीं हुई ?"

सुशीलाने कहा—"कुछ नहीं। देखती हो, जैसी-की तैसी ही तो हूँ।"

शारदा हँसकर बोली—"तुम जैसी-की-तैसी न रहोगी तो क्या हो जायगा। पर तुम्हारे देवताका क्या हाल है ?"

सुशीलाके हृदयमें चोट पहुँची। पुराणोंमें उसने पढ़ा था कि पतिनिन्दा सुनना पाप है। क्या उनके सम्बन्धमें कोई बात सुननी पड़ेगी ? बोली—"अच्छे तो हैं ? कोई नयी बात तो नहीं है।"

शारदा बहुत ही तेज और चतुर स्त्री थी। वह कुछ देर तक सुशीलाका चेहरा गौरसे देखती रही। फिर बोली—"तब आज चेहरा क्यों उतरा हुआ है ?"

सुशीलाने धीमे स्वरमें उत्तर दिया—"न जाने क्यों कल रातमें नींद नहीं आयी।"

शारदा बोली—"इसीलिये नींद नहीं आयी कि कल रातमें देवता घरमें न थे।"

सुशीलाको काठ मार गया। काटो तो खून नहीं। इसे कैसे मालूम हुआ कि कल रातमें बल्लभदास घरमें न थे। वह अवाक् हो, शारदाका चेहरा देखने लगी।

शारदा बोली—"मेरा मुँह क्या देख रही हो ? क्या मैं झूठ कहती हूँ ?"

सुशीलासे फिर भी कोई जवाब देते न बन पड़ा। वह सोचने लगी—इसे यह घटना कैसे मालूम हुई। उसे चुप देख, शारदा ही फिर

बोली—"तुम्हे खबर नहीं है, पर मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे यहाँ क्या हो रहा है ?"

इस बार सुशीलाने जरा गम्भीर होकर कहा—"तुम्हारी बात मेरी समझमें स्पष्ट नहीं आती। जरा खुलासा कहो। क्या किसीके मर्द कहीं बाहर नहीं जाते। इसमें बुराईकी कौन सी बात है ?"

शारदाने कहा—"रंज होनेकी बात नहीं है। किसीके मर्द कहीं बाहर जाते क्यों नहीं हैं, पर इसलिये नहीं जाते कि उसका घर खाकमें मिल जाय। सुशीला तू भोली-भाली है। तू अभी तक वास्तव में कुछ नहीं समझती।"

इतना कह उसने सुशीलाके कानके पास मुँह ले जाकर जो कुछ कहा, उससे सुशीला एकदम चौंक पड़ी। घबराकर बोली—"नहीं नहीं बहन ! ऐसा नहीं हो सकता। वे मेरे और केवल मेरे ही हैं। ऐसा कहकर उनपर कलंक न लगाओ, मेरे हृदयमें सन्देहका बीज न बोओ।"

चतुरा शारदा बोली—"ईश्वर करे वैसा ही हो, जैसा तू समझती है। परन्तु सुशीला ! बात वास्तवमें वैसी नहीं हैं, मुझे जो समाचार मिले हैं, वे वास्तवमें भयानक हैं और इसीलिये मैं इस समय आयी हूँ कि तुझे सावधान कर दूँ।"

परन्तु फिर भी सरला सुशीलाको विश्वास न हुआ। वह बोली "नहीं, यह कभी सम्भव नहीं है।"

कहनेको तो वह यह कह गयी, परन्तु इसी समय कल रातकी घटना और चित्रवाली बात उसे याद हो आयी। अपने पतिका वह सूखा

व्यवहार भी उसे स्मरण हो आया। उसकी आँखोंसे टपाटप आँसु-की बूँदें गिरने लगीं। वह घबराकर इधर उधर देखने लगी।

शारदाने उसकी यह अवस्था देख, अपने आँचलसे उसकी आँखें पोंछते हुए कहा—'इतना घबरानेसे क्या होगा? तू पढ़ी-लिखी बुद्धिमती है। इस समय उन्हे सम्हालनेकी चेष्टा करनी होगी न कि घबराकर काम बिगाड़ देनेकी।"

रोते-रोते ही सुशीलाने कहा—बहिन, मैं उनपर कलंकका एक धब्बा भी नहीं देख सकती। यह समाचार सुननेके पहले ही इस संसारसे उठ जाना कहीं अच्छा समझती हूँ।"

सुशीलाकी पति-भक्ति देख शारदाकी आँखोंमें भी आँसू उमड़ आये। उसने बहुत कोमल स्वरमें कहा—"परन्तु यदि वैसा हो जाये तो?"

सुशीलाके मुँहसे कोई जवाब न मिला। उसने सर झुका लिया। इसी समय शारदाने अपने वस्त्रोंमेंसे एक चित्र निकाला। इसके बाद सुशीलाको सम्बोधनकर बोली—"इधर देख, रोनेसे काम न चलेगा।"

सुशीलाने ज्योंही उसकी ओर देखा त्योंही शारदाने वह चित्र उसके हाथमें देते हुए कहा—"देख तो कितनी सुन्दर औरत है!"

सुशीलाने वह चित्र हाथमें ले लिया। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह चौंक पड़ी। यह तो उसी रमणीकी तस्वीर है। इस चित्रपर दृष्टि पड़ते ही वह काँप उठी। घबराकर बोली—"फिर नहीं? बड़ी सुंदर है, बहिन! यह बहुत सुन्दर है!! पर यह चित्र मेरे सामनेसे दूर हटाओ। यह चित्र मेरे घरमें आग लगा देगा।"

शारदा उसकी ये बातें सुन अचरजमें जा पड़ी। वह सोचने लगी—क्या यह चित्र सुशीलाने कहीं देखा है ? इस तस्वीरवाली स्त्रीसे वह इतना घबराती क्यों है ?

सुशीला ही फिर बोली—"इतनी सुन्दर स्त्री मैंने कभी नहीं देखी। परन्तु बहिन! सर्प भी तो बहुत सुन्दर होता है, क्या उसमें विष नहीं होता ? सुन्दर चमकीले बर्फमें क्या गला देनेकी शक्ति नहीं रहती ? चमकती लहराती आगमें क्या जला देनेकी ताकत नहीं होती ? गुलाबमें काँटा नहीं होता ? इस चित्रको मेरे सामनेसे हटाओ।"

शारदा तो घबरा उठी। बोली—"यह चित्र क्या पहले तूने कहीं देखा है ?"

सुशीला अपने मुँहसे आप ही पकड़में आ गयी। जो प्रकट नहीं करना चाहती थी, हृदयके आवेशमें—प्राणोंकी व्याकुलतामें, वह आपसे आप प्रकट हो गया। अब क्या हो सकता था! बोली—"यह सब सुनकर क्या करोगी बहिन, जो भाग्यमें बदा होगा भोग लूँगी।

इतना कह, उसने वह तस्वीर शारदाकी ओर फेंकते हुए कहा—"इसे मेरे सामनेसे दूर हटाओ।"

शारदा कुछ देर तक चुप रहकर फिर बोली—"तू तो पगली हो रही है, सच्ची बातें क्यों नहीं बताती ?"

इस बार सुशीलाने कुछ गम्भीर होकर कहा—"सच्ची बात क्या बताऊँ ? मैं नहीं जानती कि यह तस्वीर किसकी है, इसमें जो

रूपवती रमणी है, उसका मेरे घरसे क्या सम्बन्ध है और यह चित्र बारबार क्यों मेरे सामने आता है ?"

सुशीला इतना कहकर ध्यानसे शारदाका चेहरा देखने लगी। मानों उसके हृदयके भीतर पैठकर उस रमणीका परिचय जानना चाहती हो।

शारदा बोली—"इतना तो मैं ही बता दूँगी। अच्छा जब तू मुझसे कहलाना ही चाहती है, तो ध्यानसे सुन—यह चित्र यहाँकी प्रधान ऐक्ट्रेस मिस पन्नाका है, तेरे देवता इसीके फेरमें आजकल पड़े हैं और यही तेरा तथा इस चित्रका सम्बन्ध है।"

सुशीला—सरल हृदया सुशीलापर इतना सुनते ही मानो आकाशसे वज्र आ गिरा। वह तिलमिला उठी। घबराकर बोली—"झूठी बात है शारदा, बिलकुल झूठी, मेरे देवता ऐसे नहीं हो सकते। तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

शारदाने कहा—"तेरे बहनोईसे। पहले भी उन्हें सन्देह हुआ था। परन्तु उस समय उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। इस बार तीर्थयात्रासे लौटनेपर, जब फिर भी उन्होंने ये बातें सुनीं तो उन्हे बहुत बुरा मालूम हुआ और सच्चा भेद लेनेके लिये उन्होंने अपने आदमी लगाये। बल्लभदास तो कल रातमें घरमें भी नहीं थे। बहिन, इसमें असत्यका एक लेश भी नहीं है परन्तु तूने यह चित्र कहाँ देखा ?"

अब छिपानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। सुशीलाने गम्भीर आवाजमें कहा—"इसी पलंगपर।"

शारदा चकित होकर बोली—"इसी पलंग पर! क्या वल्लभ-दासके पास था?"

सुशीलाने अब सारी घटनाएँ खुलासा बता दीं। सुनकर शारदा बोली—"यह तो बड़ी भयंकर बात है! आखिर यह चित्र फेंक जानेवाला कौन था?"

सुशीला बोली—"क्या जानूँ, शारदा! कौन था। पर इसमें कोई भेद अवश्य छिपा है?"

शारदा बहुत देर तक बैठी-बैठी कुछ सोचती रही, परन्तु कोई भी बात उसकी समझमें न आयी।

इसी समय वल्लभदास उस कमरेमें आते दिखाई दिये। इस समय भी उनका चेहरा भर्राया हुआ था, आँखें चढ़ी थीं और वे किसी घोर चिन्तामें निमग्न-से दिखाई देते थे।

तीसरा परिच्छेद
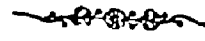
गुप्त षड्यंत्र
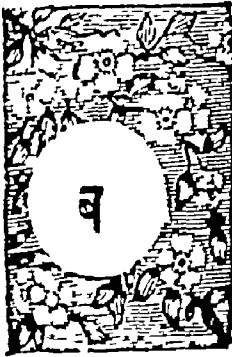
म्बई—लोकनाथके पास समुद्र तटपर एक सुन्दर बाग लगा हुआ है। बागके बीचो-बीच एक खूबसूरत बँगला है, जो बेशकीमत सामानोंसे अच्छी तरह सजाया हुआ है।

इसी बँगलेके एक एकान्त कमरेमें हम एक नवयुवकको बैठा देखते हैं। युवक देखनेमें जैसा सुन्दर है, उसके वस्त्र-आभूषण भी वैसे ही बहुमूल्य हैं। युवक इस समय किसी चिन्तामें पड़ा हुआ है। संध्या हो गयी है परन्तु इस ओर उसका ध्यान नहीं है। वह कुछ सोचता और रह रहकर दरवाजेकी ओर देखता है मानो किसीके आनेकी राह देख रहा है।

इसी तरह उसे बैठे बैठे बहुत देर हो गयी, पर जब कोई भी नहीं आया तब उसने उसी स्थानपर रखी घंटी जोरसे बजा दी। तुरन्त ही एक लड़का दौड़ता हुआ आया। उस युवकने लड़केकी ओर देखकर कहा—"हरनामसिंहको बुलाओ।"

लड़का दौड़ता हुआ चला गया। इसके थोड़ी ही देर बाद एक हृष्ट-पुष्ट जवान उस कमरेमें आ पहुँचा। युवकने उस मनुष्यकी

ओर देखते हुए कहा— 'क्या बात है हरनामसिंह ! क्या अब तक खबर नहीं भेजी गयी ?"

हरनामसिंह ने कहा—"नहीं सरकार ! खबर भेजे बहुत देर हो गयी। अब वे आना ही चाहते हैं।"

युवकने कहा—"संध्या हो गयी और अबतक मेरा काम नहीं हुआ। क्या कोई बाधा आ पड़ी।"

हरनामसिंह ने कोई उत्तर न दिया। कुछ सोचकर वह युवक फिर बोला—"एक बार तुम जाओ ?"

"बहुत अच्छा सरकार' कहकर हरनामसिंह उस कमरेसे निकला ही था, कि एकाएक गाड़ीकी आवाज सुन पड़ी और तुरन्त ही एक बहुत बढ़िया जोड़ी गाड़ी बागके भीतर तक चली आयी। उसपरसे एक खूबसूरत युवक उतरा और बड़ी ही मस्त चालसे उस बंगलेकी ओर चला, जिसमें पहला युवक बैठा हुआ था। बीचमें ही हरनामसिंहसे उसकी भेंट हुई। हरनामसिंह उसे देखकर बोला—"आपके बिना तो सरकार का क्षणभर जी ही नहीं लगता, जाइये बहुत घबरा रहे हैं।"

युवक मुसकुराया और तेजी से उस बँगलेकी ओर चला। उस कमरेवाले युवकके कानोंमें भी गाड़ीकी आवाज पहुँच गयी थी। अतएव, वह भी कमरेसे बाहर निकल आया और ज्योंही उसकी दृष्टि इस नये आये हुए युवकपर पड़ी, वह मुस्कुराता हुआ आगे बढ़कर बोला—"वाह खूब इन्तजार करायी !"

आये हुए युवकने हँस दिया। बोला—"जरा अपनी घड़ी तो देखिये, क्या समय स्थिर हुआ था।"

युवकने घड़ी देखी। आश्चर्यसे बोला—"ओह, अभी तो सात नहीं बजे हैं। पर हीरालाल! मुझे तो ऐसा मालूम होता था मानों बरसोंसे तुमसे भेंट न हुई हो।"

हीरालाल ने कहा—"इसका मतलब यह है कि आपका मुझपर बहुत अधिक स्नेह है।"

युवक बोला—"अब भी क्या परीक्षा लेना बाकी है?"

हीरालालने हँसते हुए कहा—"पर मनुष्यका मन भी तो हमेशा नयी ही चीज खोजा करता है। बाबू राधारमण! आप तो आजकल बहुत सुशील बनते जा रहे हैं।

युवक राधारमणका चेहरा कुछ उतर गया। परन्तु चतुर हीरालालने राधारमणका हाथ अपने हाथमें ले लिया और जोर जोरसे दबाता हुआ बोला—"कहिये कैसे पते की कही है?"

इस बार राधारमणने मुसकुराकर कहा—"बात तो ऐसी ही है पर इसमें भी एक रहस्य छिपा हुआ है?"

इस समय तक दोनों बागकी रविशोंपर टहलते हुए ठीक समुद्र तट तक जा पहुँचे थे। बागके नीचे ही समुद्र लहरा रहा था। एकाएक उस समुद्रकी ओर देखकर हीरालाल बोला—"कैसा शान्त है और कितना गम्भीर!"

राधारमण बोला—"हाँ, है तो ऐसा ही, परन्तु इसमें जब लहरें उठती है तब?"

हीरालाल बोला—"मनुष्यका मन भी ऐसा ही रहना चाहिये।"

राधारमणने कहा—"ऐसा ही शान्त और गम्भीर तो मन भी रहता है। परन्तु जिस तरह हवा के झटके इसमें तरंगें पैदा कर देते हैं, उसी तरह मनुष्यके मनमें भी ये सासारिक घटनाएँ दुःख, शोक, आवेग और प्रसन्नताकी तरंगें पैदा कर देती हैं।"

हीरालाल इस बार ठहाका मारकर हँसा। बोला—"आ गये जनाब अपनी जगह पर। ये स्वार्थ-सिद्धिकी इच्छाएँ हैं जो मनुष्य-के मनको चचल, विकल और कातर बना देती हैं। अच्छा, और भी कुछ बताऊँ क्या?"

राधारमणने उसकी ओर जरा टेढ़ी नजरसे देखते हुए कहा—चुप भी रहो, दीवारोंके भी कान होते हैं?"

हीरालाल बोला—"पर यहाँ तो दीवार नहीं, वृक्ष हैं और समुद्र का अथाह जल है।"

राधारमणने गम्भीर होकर कहा—"ठीक है, पर भेद आखिर भेद ही है।"

दोनों ही उस स्थानपर रखी पत्थरकी एक खूबसूरत बेन्च-पर बैठ गये। हीरालाल बोला—"खैर, अपना भेद आप अपने पास रखिये, उससे मुझे मतलब नहीं। कृपया यह बताइये कि यह वारण्ट क्यों भेजा गया था?"

राधारमणने कुछ गम्भीर होकर कहा—"तुम जानते हो कि मैं तुम्हें अपना अभिन्न हृदय मित्र समझता हूँ। इसीलिये सभी विषयोंमें तुमसे सलाह लेकर काम करना चाहता हूँ।...और...

अभी कुछ और भी राधारमण कहना ही चाहता था कि इसी समय वल्लभदास दौड़ते हुए उसके पास आ पहुँचे। आते ही उन्होंने राधारमणकी ओर देखकर कहा—"यह कैसी भयंकर चाल है मित्र! यह कौन ऐसा भयंकर आदमी है जो रातमें मेरे घर आ पहुँचा था और देखो—यह चित्र मेरे यहाँ क्यों पहुँचा आया। मैं आज सवेरेसे तुम्हें खोज रहा हूँ।"

एकाएक वल्लभदासके उस स्थानपर आ जानेके कारण इन दोनों मित्रोंकी वात-चीतमें वाधा आ पड़ी। राधारमणने वल्लभदासकी वातें सुनकर एक वार तिरछी दृष्टिसे हीरालालकी ओर देखा, परन्तु इसके पहले ही हीरालाल वहाँसे उठकर एक ओर टहलने लगा था। अव राधारमणने वल्लभदासको आदरसे अपने पास वैठाकर कहा—"आप इतने घवराये क्यों हैं?"

वल्लभदासने कहा—"घवरानेकी तो वात ही है। वताओ यह तो किसी वड़े दुष्ट आदमीका काम है। यह चित्र मेरी स्त्रीके पास भेजकर उसको क्या लाभ था। वृथा ही उसके मनमें सन्देहका वीज वोना और मेरी वुराई करना।"

राधारमणने कहा—"पर क्या उसे मालूम हो गया कि यह चित्र किसका है?"

वल्लभदास—"कह नहीं सकता। मैं आज सवेरे भी दो वार तुम्हारे वँगलेपर गया था। पर तुमसे भेंट न हुई। वताओ इसमें क्या रहस्य है?"

राधारमणने वड़ी शान्तिसे कहा—"इसमें घवरानेकी कौन-सी

बात है वल्लभ, ऐसा तो हुआ ही करता है और अब तो तुमने प्रेम-पथपर पैर बढ़ाये हैं—प्रेममें ऐसी बाधायें तो आया ही करती हैं। किसीने भेज दिया होगा। शायद तुम्हारी हृदयेश्वरी का कोई प्रेमिक और भी हो, जिसको तुम्हारा और उसका इतना घनिष्ट सम्बन्ध सहन न होता हो।"

वल्लभदासने कहा—"यह तो और भी भयंकर बात तुमने सुना दी। वह कौन सा ऐसा मनुष्य है, जो मेरी राहका रोड़ा बनना चाहता है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि पन्ना मुझे जी जानसे प्यार करती है, वह कितनी ही बार कह चुकी है कि मैं तुम्हारे लिये सर्वस्व, यहाँ तक कि थियेटरकी यह नौकरी और कीर्त्ति भी त्यागनेको तैयार हूँ। वह तो मेरी हो रही है। अब यह दूसरा कौन आ पहुँचा?"

राधारमण हँसा। हँसकर बोला—"वास्तवमें बात ऐसी ही है। इससे कौन इनकार कर सकता है?"

वल्लभदासने फिर कहा—"तुम तो मेरे मित्र हो। तुमसे क्या छिपा है। आज लगभग एक वर्षके हुआ, तुम्हारे इसी बागमें, वह जो उत्सव था, उसमें तुमने ही पन्नाको बुलाया था। शायद तुम्हारी उसकी पहलेकी जान-पहचान हो। मेरा उसका परिचय और प्रेम का सूत्रपात इसी जगहसे हुआ था। उस दिनसे आजतक मैंने इस चतुरतासे यह प्रेम निवाहा कि किसीको कानोकान खबर नहीं हुई! किसीने यह सन्देह भी नहीं किया कि वल्लभदास ...

राधारमणने कहा—"बात तो ठीक है पर जादू वह जो सरपर

चढ़कर बोले । भले आदमी, प्रेम और पाप कभी छिपता है !"

वल्लभदासने कहा—'नहीं, कल भूल हो गयी । पन्ना का आग्रह मैं टाल न सका। घर छोड़कर कल रातमें बाहर निकलना ही इस अनर्थका कारण हो गया ।"

इस बार राधारमणने जरा व्यंग-भावसे कहा—"जब नाचने ही निकले तब घूंघट कैसा ? मुझे तो मालूम होता है, कि तुम अपनी स्त्री से दबते या डरते हो । मेरी तो कोई भी बात तुमसे छिपी नहीं है पर मैं तो इतना भय नहीं खाता ।"

तुरन्त ही वल्लभदासने कहा—"नहीं, ऐब करनेको भी हुनर चाहिये । बात फूटनेसे गृह-कलह पैदा हो जाती है, समाजमें बदनामी होती है ।"

राधारमण ठहाका मारकर हँस पड़ा । बोला—'पागल हुए हो, चिरजीवी रहे हमारा हिन्दू-समाज ! पुरुषोंको तो जब तक यह समाज वर्तमान है, निर्द्वन्द्व रहना चाहिये। आप वेश्यागामी होइये या चाण्डालिनीगामी—अथवा जो जीमें आये कीजिये—अपराधिनी मानी जायगी स्त्री ही । जातिसे निकाली जायगी स्त्री ही, धन सम्पत्तिके अधिकारसे छुड़ायी जायगी नारी ही । नर तो नारायणका रूप है । इस जातिमें नरको तो कोई दूषण ही नहीं लग सकता । तुम निर्द्वन्द्व रहो वल्लभ दास ! चिन्ताकी कोई भी बात नहीं है ।"

वल्लभदासने कुछ रुष्ट होकर कहा—"मैं तुम्हारा व्याख्यान सुनने इस समय नहीं आया हूँ । यह बताओ कि अब क्या करना चाहिये ।"

राधारमण बोला—"नाराज न हो। मैं कौन सा उपाय बताऊँ? मेरे जानमें तो तुम्हारा कोई भी शत्रु नहीं है। खैर बात अच्छी नहीं है, तुम निश्चिन्त रहो। मैं पता लगानेकी चेष्टा करूँगा।"

वल्लभदासका राधारमणपर बहुत अधिक विश्वास था। दोनों में ही बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था। अतएव राधारमण की बातपर वल्लभदास कुछ शान्त हुए और बोले—"अच्छा, अब मैं जाता हूँ, पर तुम निश्चिन्त न बैठ जाना।"

राधारमण मुसकुराता हुआ बोला—"नहीं यह भी कभी सम्भव है।" वल्लभदास उठकर चले।

इसी समय हीरालाल, जो अब तक छिपा हुआ, इनकी बातें सुन रहा था, हँसता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा। बोला—"तुम तो बड़े भारी खिलाड़ी हो।"

राधारमणने कोई उत्तर नहीं दिया। हीरालाल ही फिर बोला—"इस सीधे सादे आदमीको क्यों तग कर रहे हो?"

इसबार राधारमणने कुटिल दृष्टिसे हीरालालकी ओर देखते हुए कहा—"हीरालाल! तुम्हे दर्द होता है क्या? कहो तो तुम्हारे दर्दका भी इलाज कर दूँ।"

हीरालाल कुछ अप्रतिभ हो पड़ा। संकोचसे बोला—"दर्दकी कौन सी बात है, पर यह खेल अच्छा नहीं। तुम दोनों मित्र हो।"

राधारमण बोला—"अवश्य था पर घटनाओंने उस मित्रतापर हरताल फेर दिया। तुम जानते हो राधारमण किस धातुका आदमी है। मेरा सर्वस्व चला जाये, पर अपमान सहन नहीं होता। सुशी-

लासे इस अपमानका बदला लेना ही होगा। मैं देखूँगा, वह कितनी बड़ी सती है। उस दिन उसने बड़े गर्वसे कहा था, कि सत्यका बल, सब बलोंमें जबर्दस्त है। मैं भी देखूँगा, कि स्त्री बलवती होती है या पुरुष।"

इतना कहते कहते राधारमण बहुत ही उत्तेजित हो उठा। वह हीरालालका हाथ छोड़ उठ खड़ा हुआ और इधर उधर टहलता हुआ मन ही मन कुछ बड़बड़ाने और सोचने लगा—इसके बाद उसने जोरसे पुकारा—"हरमनामसिंह।"

तुरन्त ही वही मोटा ताजा जमादार आ पहुँचा। राधारमणने उसे एक ओर ले जाकर कुछ समझाया और फिर उसी पत्थरकी चौकीपर आ बैठा। इस समय भी हीरालाल उसी जगह बैठा हुआ ध्यानसे राधारमणका चेहरा देख रहा था।

उस स्थानपर आकर हीरालालको सम्बोधन करते हुए, राधारमणने कहा—"अब यह झमेला बहुत जल्द समाप्त करना होगा। बोलो, तुम इसमें कुछ सहारा दे सकते हो?"

हीरालाल बोला—"मैं हर तरहसे तुम्हारा साथ देनेके लिये तैयार हूँ, परन्तु यह तो बताओ कि मामला क्या है?"

राधारमणने एक ठण्डी साँस लेकर कहा—"मामला क्या बताऊँ। तुम जानते हो कि मेरी यह प्रकृति है कि जो धुन सवार हुई, वह जल्द नहीं उतरती। उस दिन मेरे इसी बागमें उत्सव था। मेरे घरकी सभी स्त्रियाँ भी आयी हुई थीं और वल्लभदासके साथ यह सुशीला भी आयी थी। ओह! गजबका रूप इसने पाया है।

इस जगतमें इतनी सुन्दरता मैंने तो अपनी आँखों नहीं देखी। सुशीलाके इस रूपने मेरी आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर दी, मेरे मन-पर जादू डाल दिया और मैं अपने तनोबदनकी सुध भूल गया। परन्तु जो हो, मैं भी मौका देख एकान्तमें उसके पास गया। उस समय उसने जो शब्द कहे थे, वे आज भी मेरी छातीमें चुभ रहे हैं। उसने कहा था—नारी-जीवन व्यभिचारके लिये नहीं है—यह सतीका जीवन है। शक्तिका अवतार है। मेरी ओर पाप दृष्टिसे देखनेवालेको मैं ठोकर मारती हूँ। आप मेरे पतिके मित्र हैं, इसलिये छोड़े देती हूँ, नहीं तो मजा चखा देती।

"सुशीलाका वह तेज, वह दर्प, वह अहंकार बरसों हो गये आज भी मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है। मैंने बड़ी बड़ी रूपवती और सती कहलानेवाली स्त्रियाँ देखी हैं—पर बस कहने भरके लिये। कसौटीपर जहाँ कसा, कि मुलम्मा ही निकला। परन्तु सुशीला! ओह!"

हीरालालने कहा—"बात तो ऐसी ही है। वल्लभदास वास्तवमें भाग्यशाली मनुष्य है।"

राधारमणने दाँत पीसते हुए कहा—"मैं देखूँगा कि वह कितना बड़ा भाग्यशाली है। उसे तथा उसकी गृहस्थीको जहन्नुममें मिला दूँगा और तब पूछूँगा—"सुशीला बता—तेरा वह शक्तिका अवतार कहाँ है? अब भी पुरुषोंकी श्रेष्ठता तू स्वीकार करती है या नहीं और सत्यका यह आडम्बर छोड़ना चाहती है या नहीं?"

हीरालाल चुपचाप उसकी ये बातें सुनता रहा। कुछ देर बाद

बोला—"परन्तु इसमें तुम्हारी भी बदनामी होनेकी सम्भावना है, अपमानका भय है ! तुम जानते हो, तुम्हारा खानदान कितना ऊँचा है, तुम्हारा वंश-गौरव सदाचारके लिये सदा जगत् प्रसिद्ध रहा है।"

राधारमणने कहा—"इस समय उन बातों पर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है। कार्यं साधयामि वा शरीरं पातयामि। आओ, मेरे साथ आओ।"

हीरालाल और राधारमण दोनों ही उठ खड़े हुए। राधारमणने कहा—"देखो, तुमपर मेरा अत्यन्त विश्वास है, इसीलिये तुम्हें अपने साथ लिया है। प्रतिज्ञा करो कि यह रहस्य किसी पर प्रकट न होगा।"

इस समय संध्या हो गयी थी। समुद्रके अथाह जलमें हलकी तरंगें उठ रही थीं और उनपर मानों नीली चादरका आवरण-सा चढ़ता चला आता था। आकाशमें तारे छिटक पड़े थे। परन्तु उनकी फीकी ज्योति वृक्षोंपर, पौधोंपर और नील सागरकी अथाह-जलराशि पर कुछ अद्भुद् ही दृश्य दिखा रही थीं।

हीरालाल बोला—"देखो, राधारमण ! यद्यपि मैं इन झमेलोंसे दूर ही रहनेवाला आदमी हूँ, परन्तु तुम्हे अपना मित्र स्वीकार कर चुका हूँ। इसलिये इस अनन्त आकाशके नीचे खड़ा होकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि तुम्हारा यह रहस्य किसी पर भी प्रकट न करूँगा।"

राधारमणने एक टटोलनेवाली दृष्टि उसके चेहरेपर डाली और बोला—"यथेष्ट है, मैं तुम्हारी बातपर विश्वास करता हूँ। चलो, मेरे साथ चलो।"

दोनों ही मित्र उस बँगलेमें जा पहुँचे। इस समय वह बँगला रोशनीसे जगमगा रहा था। जिधर देखिये उधर ही वैभवका नज़ारा दिखाई पड़ता था। इसी बँगलेके एक एकान्त कमरेमें हीरालालको ले जाकर राधारमणने खड़ा कर दिया। इसके बाद दराज खोल—उसने एक चित्र निकाला और हीरालालके हाथमें देता हुआ बोला—"जरा ध्यानसे देखना।"

हीरालालने चित्र हाथमें ले लिया। पर उसपर दृष्टि डालते ही मानो वह भी चित्रमय हो गया। अपनी सुधबुध भूल गया। न जाने कितनी देर तक वह चित्र देखता रहता, यदि राधारमण बीचमें ही न बोल उठता—"देखना, कहीं दिमाग न बिगड़ जाय।"

हीरालालने आँखें उठाकर राधारमणके चेहरेकी ओर एकबार देखा। इसके बाद फिर उसकी दृष्टि उसी चित्रपर जा अटकी। धीरे धीरे बोला—"वाह! अद्भुत रूप है। जिसके घरमें यह रूप है, वह वास्तवमें भाग्यशाली है। यह किसका चित्र है?"

राधारमणने कहा—"उसीका जिसकी एकएक बात पैनी छुरी-की तरह मेरे कलेजेमें चुभ रही है।"

हीरालाल बोला—"क्या यही सुशीला है?"

राधारमणने कहा—"हाँ, यही वह मर्त्यकी अप्सरा है।"

इसी समय हरनामसिंहने बाहरसेही पुकार कर कहा—"गाड़ी तैयार है।"

राधारमणने हीरालालके हाथसे लेकर वह चित्र फिर उसी

दराजमें बन्द कर दिया। इसके वाद बोला—"चलो, तुम्हें एक दूसरा तमाशा दिखाऊँ।"

दोनों ही उस कमरेके वाहर निकल पड़े। गाड़ी बराण्डेके नीचे ही एक बढ़िया फिटन खड़ी थी, जिसमें दो वड़े वड़े वैलर घोड़े जुते हुए थे। दोनों ही उसमें जा बैठे और गाड़ी तेजीसे एक ओरको रवाना हो गयी।

—

चौथा परिच्छेद

मिस पन्ना

"वाह ! इस साड़ीमें तो तुम गज़ब ढाह रही हो बहन ! इतना रूप और यौवन लेकर क्या करोगी ? तिसपर यह फीरोजी साड़ी !!"—कहती हुई एक बीस बाईस वर्ष की युवती एक आलीशान मकानके एक सुन्दर सजे सजाये कमरेमें हँसती हुई आ पहुँची। आनेवाली भी कम खूबसूरत नहीं थी परन्तु जिस रमणी को सम्बोधनकर उसने कहा था, उसके रूपके आगे इस आनेवालीका सौन्दर्य फीका पड़ जाता था, दोनोंमें आकाश पाताल-का अन्तर दिखाई देता था।

पहली रमणी कमरेमें लगे, एक क़दआदम आइनेके सामने खड़ी हो, श्रृंगार कर रही थी। उसने घूमकर पीछेकी ओर देखा और मुसकुराकर कहा—"आ गयी मानिक !"

मानिकने कहा—"हाँ आ गयी, पर आज क्या है ? किधरकी तैयारी है, पन्ना रानी !"

पन्ना हँसती हुई बोली—'कुछ तो नहीं, कहीं जाना भी नहीं है।" इतना कह उसने पलटकर फिर आइनेमें अपना चेहरा देखा,

इसके बाद ललाटमें लगी हुई बिन्दीको ठीककर बोली—"क्या मैं वास्तवमें खूबसूरत हूँ ?"

मानिकने कहा—"लाखोंमें एक, तुम्हारा जोड़ा कहाँ है ?"

पन्ना बोली— 'पर वह रूप किस कामका जिसका कोई आदर करनेवाला न हो ?"

मानिकने हँसकर कहा—"इतना आदर क्या कभी किसीने पाया था पन्ना ! तुम बम्बईकी सर्वश्रेष्ठ ऐक्ट्रेस हो। तुम्हारे एक एक इशारे पर लाखोंका वारा-न्यारा होता है। अब भी क्या आदर करनेवालोंकी कमी है ?"

पन्ना हँस पड़ी ! बोली—"पगली, तू अब तक नहीं समझी। नारी केवल धनकी भूखी नहीं होती, वह कुछ दूसरी ही चीज चाहती है पर वह चीज हमलोगोंके भाग्यमें बदा नहीं है।"

मानिकने कहा—"तुम्हारी सुन्दरता पर लोग पतंगकी तरह निछावर हो रहे हैं, तुम्हारे एक प्रेम-भरे कटाक्षके लिये पुरुष-जाति पागल हो रही है। लोग अपना यथासर्वस्व अर्पण कर भी तुम्हे प्राप्त करनेके लिये व्याकुल रहते हैं। अब क्या चाहती हो पन्ना ?"

पन्ना बोली—"मानती हूँ, सब कुछ है, पर लोग छिपकर मेरे यहाँ आते हैं, वे अपने पैसेके बलपर मुझे खरीद लेना चाहते हैं। बताओ, मेरा असली मूल्य क्या है ?"

मानिक कोई उत्तर न दे सकी। कुछ देर बाद बोली—"तुम्हारा रूप और तुम्हारे सौभाग्यपर लोग ईर्षा करते हैं और तुम्हीं ऐसा कहती हो ?"

पन्नाने कहा—"यह सब सत्य है। मुझे देखकर नहीं—मेरे रूप और ठाट-बाटको देखकर लोग ईर्षा करते हैं। मेरा तो सच्चा मूल्य यह है, कि मेरे यहाँ आनेवाला लोगोंकी नजर बचाता है, मेरे प्रेमको समाजकी दृष्टिसे छिपाना चाहता है और प्रकट हो जानेपर बदनाम हो जाता है। क्या यही नारीका वास्तविक मूल्य है?"

इतना कहते कहते पन्नाका चेहरा कुछ उदास हो गया। वह कमरेमें रखे एक बेशकीमत सोफापर बैठकर कुछ सोचने लगी। कुछ देर बाद बोली —"इसमें सन्देह नहीं, कि मेरे पास लाखोंकी सम्पत्ति है, मेरा ठाट-बाट, सजावट, रूप रंग देखकर लोग दंग हो जाते हैं, पर क्या मैं वास्तवमें सुखी हूँ!"

मानिक बोली—'आज तो देखती हूँ कि कोई नया रंग चढ़ा है! क्या मामला है?"

इसी समय गाडी की घडघड़ाहट सुन पड़ी और तुरन्त ही एक बढ़िया जोड़ी गाड़ी दरवाजेपर आकर खड़ी हो गयी। पन्नाने खिड़कीसे झांककर देखा। क्षण भरमें ही उसके चेहरेका विषाद दूर हो गया। चतुरा ऐक्ट्रेस पन्नाका वह कुम्हलाया हुआ चेहरा न जाने कहाँ गायब हो गया। उसने उठकर मानिकके गलेमें हाथ डालते और एक प्रकारसे उसे आलिङ्गन करते हुए कहा—"पगली! अभी ये बातें नहीं समझेगी..."

तुरन्त ही दो नवयुवक उस कमरेके दरवाजेपर आ पहुँचे। ये पाठकोंके अपरिचित नहीं, बल्कि वे ही राधारमण और हीरालाल हैं, जिन्हे उस बागमें हम देख चुके हैं।

राधारमणने दरवाजेपरसे ही कहा—"क्या अन्दर आ सकता हूँ ?"

पन्नाने स्वयं उठकर दरवाजेका पर्दा हटाया। वह मखमली पर्दा हटते ही ठीक ऐसा मालूम हुआ मानों चाँदका एक टुकड़ा, उस कमरेमें उतर आया है। इसके वाद मुसकुराती हुई बोली—"आइये, आपके लिये तो हमेशा ही दरवाजा खुला है।"

राधारमणने जरा तिर्छी दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए कहा—"और वल्लभदासके लिये।"

पन्ना कुछ संकुचित-सी हुई। एकबार चेहरा कुछ मुर्झाया पर तुरन्त ही वह हँसती हुई बोली—"क्यों, दलाली नहीं खायी है? जो यह वात मुँहसे निकालते हैं।"

राधारमणने कहा—'अव तक तो दलाली नहीं मिली, पर आज तुमसे वसूल करने आया हूँ।"

मानिक बैठी बैठी इनकी बातें सुन रही थी। उसने उस कमरेसे जाना चाहा, परन्तु राधारमणने राह रोकते हुए कहा—"भागती कहाँ हो, देखो यह पसन्द है।" इतना कह उसने हीरालालको उसकी ओर बढ़ा दिया। मानिकने कोई उत्तर न दिया। वह लपककर उस कमरेसे वाहर चली गयी।

राधारमणने कहा—"अवतक इसका संकोच दूर न हुआ।"

पन्ना बोली—"बड़ी सुशील है। छल-कपट विलकुल नहीं है। जैसी भीतर वैसी ही वाहर!"

राधारमणने कहा—"और तुम!"

पन्ना बोली—" मैं पक्की शैतान हूँ, नहीं तो आप जैसों को कैसे फँसा लाती।"

राधारमण ने कहा—"पर तुम्हारे नये प्रेमी तो प्रपच में जा पड़े है। उनकी स्त्रीके पास कोई तुम्हारा चित्र पहुँचा आया है और एक पत्र लिख आया है कि अपने पति से इसका परिचय पूछना।"

पन्ना बोली—"उँह! यह सब तो हुआ ही करता है। इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं, पर आदमी बड़ा सरल है।'

राधारमणने कहा—"जैसाही सरल है, वैसाही सोनेकी चिड़िया है। कहीं उड़ न जाये।"

पन्नाने गर्वसे आइनेमें फिर अपना मुख देखा। बोली—"फिर आप क्या कम हैं? आप तो हैं।"

राधारमण ने कहा—"देखो पन्ना, मैं वास्तवमें तुम्हें प्यार करता हूँ। मैं तो एक तरहसे तुम्हारे घरका आदमी हूँ। नहीं तो मैं कब दूसरों को यहाँ पैर रखने देता पर सच तो यह है कि मेरी इच्छा है कि यह आलीशान मकान तुम्हारा हो जाये।"

पन्ना बोली—"तो मुझे दिलवा दीजिये।"

राधारमणने कहा—" मैं जरूर सहारा दूँगा, पर आजकल मेरे कारबार की हालत तो तुमसे छिपी नहीं है, पर फिर भी दस बीस हजार के लिये मैं तुमसे अलग नहीं हूँ। परन्तु इसकी चेष्टा तुम्हें वल्लभदाससे करनी चाहिये। वह इस समय असाधारण धनी है। दो चार लाख भी तुम उससे ले सकती हो और इसीलिये तो उससे तुम्हारा परिचय कराया है। बात कुछ समझ में आती है?"

जो पन्ना अभी कुछ देर पहले प्रेमके आगे धन-सम्पत्तिको तुच्छ बता रही थी, इतना बड़ा मकान हाथमें आजाने की आशामें उसकी बाछें खिल उठीं। बोली—"क्या बल्लभदाससे इतनी बड़ी रकम मिलेगी?"

राधारमणने जरा मुँह बनाकर कहा—"थियेटर में नौकरी करते जिन्दगी बाती, क्या इतनी भी अक्ल नहीं आयी। यह रूप और यौवन फिर किस काम के लिये है?"

पन्ना कुछ देर तक सोचती रही। बोली—'बात तो ठीक है, पर......

राधारमणने कहा—"पर नहीं, यह काम बहुत जल्द करना होगा। वह बड़ा डरपोक आदमी है। अभी अभी मैं कह चुका हूँ कि कोई उसकी स्त्रीके पास तुम्हारा चित्र पहुँचा आया है। ऐसा न हो कि उसके घरमें कलह हो और वह तुम्हारे यहाँका आना भी छोड़ दे।"

पन्नाने एक व्यंगकी हँसी हँसकर कहा—"जनाब, ऐसा नहीं होता। होता यह है कि ज्यों ज्यों घरमें कलह बढ़ती है, त्यों त्यों हमारे प्रेमियोंका बैठना उठना हमारे यहाँ ही अधिक होने लगता है। इसीलिये तो हमलोग जीत जाती हैं। यदि कलह न हो, यदि स्त्री और भी पति-सेवा बढ़ा दे तो क्या हमलोग विजयी हो सकती हैं। राधारमण बाबू, अभी आप इस रहस्यको नहीं जानते।"

राधारमणने हँसकर कहा—"न जानना ही अच्छा है। मुझे तो

किसी को फँसाना नहीं है। मैं तो तुम्हारा भला चाहनेवाला हूँ। इसीसे जो मनमें था सो कह दिया।"

पन्नाने एक कटाक्ष करते हुए कहा—"आपको धन्यवाद! आप बीस हजारका इन्तजाम कर रखें। बाकी मैं जुटा लूँगी।"

राधारमण बोला—"जरूर, पर देर करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी तनखाहके रूपये आ गये?"

पन्ना बोली—"आपका आदमी कल दे गया।"

इसके बाद राधारमणने एकान्तमें लेजाकर पन्नाको बहुत कुछ समझाया। उनमें क्या बातें हुईं, वह समय पर आपही मालूम होजायगा। सब सुनकर पन्ना बोली—"आप तो मेरेही भलेके लिये कहते हैं। मैं बहुत जल्द प्रबन्ध करूँगी।"

राधारमणने कहा—"तो मैं अब जाता हूँ।"

पन्ना बोली—"कैसे कहूँ। पर अब कब दर्शन मिलेंगे।"

राधारमणने व्यंगसे कहा—"मेरे लिये अब तुम्हारे यहाँ स्थान कहाँ है?"

पन्नाने कहा—"आपके लिये हमेशाके वास्ते ही जगह बनानेका प्रबन्ध करती हूँ।"

इतना कह पन्नाने राधारमणका हाथ अपने हाथमें ले लिया, कुछ देर तक टकटकी लगाकर उसकी आँखोंसे आँख मिलाये उसकी ओर देखती रही। इसके बाद बोली—"अच्छा जाइये।"

हीरालाल चुपचाप इनकी लीलाएँ देखता खड़ा था। इस बार पन्नाने उसकी ओर घूमकर कहा—"आप तो कुछ बोलते ही नहीं।"

हीरालाल मुस्कुराकर बोला—"क्या कहूँ ?"

राधारमण बीचमें ही बोल उठा—"ये आज पहले पहल शागिर्दी करने निकले है ।"

"ऐसा !" कहकर पन्ना उसकी ओर बढ़ी । बोली—"फिर जरूर आइयेगा ।" और उसका दाहिना हाथ अपने हाथमें लेकर दबाती हुई बोली— 'यह अँगरेजी विदा की चाल है, समझे ।"

हीरालाल संकुचित हो उठा, पर राधारमणने उसके गलेमें हाथ डालकर कहा—' देखो, आजसेही कोर्ट शिप आरम्भ होगया । इससे सावधान रहना ।'

इसके बाद दोनोंही चले गये । पन्ना फिर उसी बड़े आइनेके सामने जाकर खड़ी हो गयी । इधर उधर बिखरे केश उसने फिरसे सँवार लिये, एक बार पलटकर घड़ीकी ओर देखा । फिर कमरेमें इधर उधर टहलने लगी । कुछ देरके लिये उस कमरेसे बाहर चली गयी । थोड़ी देर बाद ही लौट आयी । लौटकर एक लिफाफा दराजमें रखा । इसके कुछ ही देर बाद वल्लभदास आ पहुँचे । वल्लभदासको देखतेही पन्ना बोली— 'आज बहुत देर कर दी । क्या भूल गये कि आपके बिना क्षण भर भी मुझे कल नहीं पड़ती ? कबसे आपकी राह देख रही हूँ ।" इतना कहते कहते उसकी आँखोंसे आँसुओंकी कई बूँदे टपक पड़ीं । इसके बाद वल्लभदास कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि अपने आँचलसे आँसू पोंछती हुई पन्ना बोली—"पुरुष जातिका हृदय न जाने परमात्माने कितना कठोर बनाया है ।

इनपर कुछ असर ही नहीं होता। और क्या नारी-जातिका जन्म रोनेके लिये ही हुआ है ?"

इतना कह, वह धम्मसे सोफा पर बैठ गयी। इस समय उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लगी हुई थी। रह रहकर वह फीरोजी रेशमी आँचलका कोना आँखोंसे जा लगता था।

वल्लभदास तो मानो हतबुद्धिसे होगये। घबराकर बोले—"क्यों इस तरह रोनेका कौन-सा कारण हो गया ? मुझे तो आज कुछ ज्यादा देर नहीं हुई है।"

पन्नाने रोनी आवाज़में ही कहा—"यदि दिखा सकती तो कलेजा चीरकर आपको दिखा देती कि इसमें आपकी मूर्ति किस तरह समायी हुई है, परन्तु आपको क्या कहूँ।"

वल्लभदासने कहा—"ठीक वही हालत इधर भी है, पन्ना ! इसमें जरा भी शक नहीं है। परन्तु ··· ·"

"परन्तु···क्या ? यही न कि मैं वेश्या हूँ। दिल बहलानेकी एक सामग्री हूँ। जब सारी झंझटोंसे आपको फुर्सत मिलेगी तब आप घण्टे दो घण्टेके लिये डरते-काँपते यहाँ आ जायँगे और अपने मनकी मौज पूरी कर चले जायँगे"—कहती हुई, पन्ना इस तरह टकटकी लगाकर उनकी ओर देखने लगी मानो उनके उत्तर पर ही उसका सारा जीवन-सुख निर्भर हो। इस समय उसकी बड़ी बड़ी आमकी फाँकोंसी आँखें कुछ लाल होती हुई लबालब आँसुओंसे भर रही थीं और ठीक ऐसा मालूम होता था मानो किसी सरोवर-में दो लाल कमल खिले हुए हैं।

वल्लभदास इस रूपका तेज और आँसुओंका प्रभाव न सह सके। बोले—"ऐसी बात नहीं है पन्ना, बात कुछ दूसरी ही है।"

पन्नाने एक कटाक्ष-बाण छोड़ते हुए कुछ धीमी आवाजमें कहा—"दूसरी बात क्या हो सकती है, वल्लभ बाबू! सच तो यह है कि पुरुष जातिको प्यार करना ही बड़ी भारी भूल है। यह तो भौंरेकी जाति है, एक फूलका रस लिया फिर दूसरेकी ओर दौड़ पड़े।"

अभी तक वल्लभदास खड़े ही थे। आने के साथ ही पन्ना ने इस तरह उनपर वाक्य-बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया था कि उन्हे बैठने की सुधि न थी। अब पन्ना ने उनका हाथ पकड़ खींचकर अपने पास ही उस सोफापर बैठाते हुए कहा—"क्यों क्या मैं झूठ कहती हूँ?"

वल्लभदास सरल प्रकृति के मनुष्य थे। उनमें छल-कपट नहीं था और न कभी वे इन चक्करों में पड़े ही थे। सदैव हाव-भाव में पली पन्ना की वह अनोखी भाव-भङ्गी, कटाक्ष और वाक्य-बाणों से इस समय उनकी बुद्धि चक्कर खा गयी। उनके मुँह से सहसा कोई उत्तर नहीं निकलता था। उनको चुप देखकर पन्ना फिर बोली—"क्या सोच रहे हैं?'

वल्लभदासने कहा—"सोच रहा हूँ, कि मैं वास्तवमें अभागा हूँ। मुझसे किसीको भी सुख नहीं मिला। न तुम ही प्रसन्न हो, न घरवाले ही।"

पन्नाने तिरछी दृष्टिसे उनकी ओर देखा। मन ही मन मुसकुरायी। समझ गयी, कि घरवालोंकी अप्रसन्नताके भीतर क्या

रहस्य छिपा है। राधारमणने तस्वीरवाली बात उसे बता ही दी थी। बोली—"क्यों क्यों क्या हुआ ? घरवाले क्यों अप्रसन्न रहने लगे ? मेरी बात तो छोड़ दीजिये, मेरी प्रसन्नता अप्रसन्नतासे आपको क्या मतलब !"

वल्लभदासने एक ठण्ढी साँस खींचकर कहा—"पन्ना ! तुम अब तक नहीं समझीं। उस दिन राधारमणके बागमें जबसे तुमपर दृष्टि पड़ी तब से ही मैं अपनी सुध बुध भूल गया। और

बीचमें ही पन्नाने बात काटकर कहा—"और इसीलिये कभी कभी दिल बहलाने यहाँ लुक छिपकर आने लगे। कितना बढ़िया सुध बुध भूलना है।"

वल्लभदासने कहा—'ऐसा नहीं है पन्ना ! सच तो यह है कि मेरी इच्छा दिन-रात तुम्हारे पास बैठे रहनेकी होती है, परन्तु ..."

पन्नाने जरा तीखी आवाजमें कहा—"परन्तु ऐसा कर नहीं सकते। समाजमे बदनामी होती है, घरमें झाड़ सुननी पड़ती है।"

इतना कह, पन्ना उस सोफासे झपटकर उठ खड़ी हुई। बोली—जाइये वल्लभ बाबू ! वहीं जाइये, जहाँ आपको सुख मिलता हो, वह काम कीजिये, जिसमें आपकी बदनामी नहीं होती हो ! और मैंने भूल की ! भयकर भूल की।" इतना कह, उसने दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढँक लिया। उसी जगह जमीनपर बिछी हुई कालीन पर धम्मसे बैठ गयी। इस समय उसके दोनों हाथोंसे, उसका सुन्दर चेहरा ढका हुआ था, कभी कभी उसके कण्ठसे सिसकियोंकी आवाज निकल पड़ती थी और बारबार उसका कलेजा ऊपर उछल-

उछलकर बता रहा था, कि उसके भीतर एक भयानक तूफान ऊधम मचा रहा है।

वल्लभदाससे पन्नाकी यह अवस्था देखी नहीं गयी। क्षणभर बाद ही उसके पास जा पहुँचे। जाकर जबर्दस्ती उसको जमीनसे उठाया। रूमाल निकाल, उसकी आँखें पोंछीं और हाथ पकड़कर उसे सोफापर लाकर बिठाया, पर मानों पन्नाके हृदयमें इस समय दुःखकी ज्वाला धधक रही थी, उस ज्वालासे मानो उसके समूचे हृदयका रक्त खौलकर भाफ बन गया था, जो आँसूके रूपमें आँखोंसे बाहर निकल रहा था। पन्नाने सोफापर आनेपर भी उसकी दीवारके सिरेपर अपना माथा रख दिया और उसी तरह सिसकियाँ लेती रही।

वल्लभदासने इस बार कुछ कातर-स्वरमें कहा—"न जाने आज किसका मुँह देखकर उठा था। आजका सारा दिन झंझटोंमें ही बीता। यहाँ आया कि तुमसे जरा तबियत बहलेगी, पर तुमने भी वही रंग रचा है। उठो, इधर देखो, आखिर तुम चाहती क्या हो?"

पन्ना ने गर्दन घुमाकर वल्लभदासकी ओर देखा। उसने सोचा—रस्सी बहुत खींची जा चुकी, बोली—'क्या इतनेपर भी बताना होगा कि मैं क्या चाहती हूँ। वाह रे भोली भाली पुरुष-जाति! मानों यह कुछ जानती ही नहीं—समझती नहीं। वल्लभ बाबू! आप जानते हैं, मेरे पास किसी चीजकी कमी नहीं है, रूप-यौवन, धन-सम्पत्ति सब कुछ है। मैं अब केवल आपको चाहती हूँ। आपका हृदयचाहती हूँ—आपका प्रेम चाहती हूँ। चाहती हूँ कि इसी गोदमें

सर रखकर सुख शान्तिसे, अपने प्यारेकी ओर देखती हुई, इस संसारसे विदा हो जाऊँ।" इतना कह पन्नाने अपना माथा वल्लभदासकी गोदमें रख दिया और अतृप्त नयनोंसे उनके चेहरेकी ओर देखने लगी।

वल्लभदास उसके केशोंपर हाथ फेरते हुए बोले—"मैं कब इनकार करता हूँ, पन्ना! मैं तैयार हूँ। मैं अपना हृदय ही नहीं सर्वस्व न्योछावर करने के लिये तैयार हूँ।"

पन्नाने कहा—"झूठी बात! वल्लभ बाबू! झूठी बात!"

अभी न जाने कितनी देर तक यह प्रेम-क्रीड़ा होती ही रहती कि एकाएक किसीने भयंकर आवाजमें पन्नाको पुकारा। पन्ना झपटकर उठ खड़ी हुई। वल्लभदास सावधान होकर बैठ गये। बोले—"यह कौन है?"

पन्नाने कहा—"जरा ठहरिये। पीछे सब हाल बताऊँगी। यह इस मकानकी मालकिन है। इसीने यह मकान किराये पर ले रखा है। हमलोगोंसे यही किराया वसूलकर मौज करती है।"

बाहरसे ही फिर आवाज आयी—"क्या कानमें आवाज नहीं जाती। दिनमें तो बहुत बढ़बढ़कर बातें करती थी, अब क्या हो गया।"

पन्नाने कहा—"तो इस समय क्या है?" कहती झपटती हुई पन्ना कमरेके दरवाजेपर जा पहुँची। उसने पर्दा हटा दिया। वल्लभदासने देखा—एक मोटी-ताजी काली विकरालस्वरूपा वृद्धा कर्कशाका रूप धारण किये दरवाजेपर खड़ी है। पन्नाको देखते ही वृद्धा बोली—"मैं फिर चिताये जाती हूँ। कल ही यह मकान छोड़

देना पड़ेगा और यदि न छोड़ा तो बेइज्जत कर निकालूँगी।"

पन्नाने भिड़ककर कहा—"जा जा, जो करना हो कर लेना।" इतना कह उसने जोरसे दोनों पल्ले किवाड़ भीतर से बन्द कर लिये और वल्लभदासके पास आयी और बोली—"अब इस मकानको खरीदकर ही छोड़ूँगी। अब यह अपमान नहीं सहा जाता।"

वल्लभदासने पूछा—"क्यों क्या हुआ है ?"

पन्नाने आँखें पोंछते हुए कहा—"क्या हुआ है आपको कहाँ तक बताऊँ ? बात यह है कि मकान मालिक यह मकान बेच देना चाहता है। वृद्धाकी इच्छा है कि वही इसे खरीद ले, पर किसीने झूठ ही लगा दिया है, कि मैं बीचमे बाधा दे रही हूँ। बस इसी-लिये कलसे घोर युद्ध मचा हुआ है।"

वल्लभदासने कहा—"यह तो बड़ी कर्कशा मालूम होती है।"

पन्ना बोली—"आपको इन बातोंसे क्या मतलब ? आप तो दो घड़ी मौज लेनेके लिये आते हैं। आपके हृदयमें प्रेम नहीं है, परन्तु मुझपर क्या बीत रही है, यह मैं ही जानती हूँ। आजतक इतना बड़ा अपमान कभी न सहन करना पड़ा था।"

इतना कह पन्ना वहाँसे उठकर कमरेमें इधर-उधर टहलने लगी। इस समय उसे देखनेसे ऐसा मालूम होता था मानो उसे बहुत जोरों की रुलाई आ रही है परन्तु अपने मन और शरीरका सारा जोर लगाकर उसे रोकने की चेष्टा कर रही है। कुछ देर बाद उसने उसी तरह रोनी और भर्रायी हुई आवाजमें कहा—"वल्लभ बाबू ! आप इन बातोंको क्या जानें। प्रेम करना सहज नहीं है ! प्रेममें बहुत

त्याग करना पड़ना है, प्रेममें अपना सुख सौभाग्य सबको जला देना पडता है। यह देखिये।" इतना कह वह उस कमरेमें एक ओर रखे हुए दराजके पास चली गयी। उसमेंसे एक लिफाफा निकाला और वल्लभदासके हाथमें देती हुई बोली—"इसे देखिये और तब समझमें आयगा कि पन्ना आपके लिये कितना त्याग करनेको तैयार है।"

वल्लभदासने लिफाफा खोलकर पत्र निकाला। पत्र बम्बईके एक बड़े धनी सेठका लिखा हुआ था। लिखा हुआ था कि यदि तुम मेरी नौकरी स्वीकार करो तो हजार रुपये मासिक और एक बडा मकान तुम्हें दिला दे सकता हूँ—टीकमदास।

ज्योंही वल्लभदासने पत्र पढ़ना समाप्त किया त्योंही पन्नाने वह पत्र उनके हाथसे छीनकर कहा—"देखा आपने ?" इसके बाद उस पत्रको फाडती और टुकड़े टुकड़े करती हुई बोली—"परन्तु मैं इस सम्पत्तिको ठोकर मारती हूँ। वल्लभ बाबू! प्रेम क्या चीज है, मैं समझती हूँ और यह भी जानती हूँ कि यह कैसे निवाहा जाता है ? पर आपको इससे क्या ? यह एकाङ्गिनी प्रीति ...."

अब पन्ना अपने हृदय का वेग न रोक सकी। फूट फूटकर रोती हुई बोली—"यह हजार रुपया महीना और कई लाखका मकान जहन्नुम में जाये! वल्लभ बाबू! मैं आपको चाहती हूँ। आपके साथ जगलमें घास फूसकी कुटियामें पड़े रहना इस भोग-विलाससे लाख दर्जे अच्छा समझती हूँ। अब कैसे समझाऊँ ?"

इतना कह वह उत्तरकी आशामें वल्लभदासके चेहरेकी ओर गौरसे देखने लगी। कुछ क्षण बाद, उनके पास ही, उनके पैरोंके निकट जमीनपर बैठकर, वल्लभदासके घुटनेपर अपना माथा रख, कातर नयनोंसे उनकी ओर देखती हुई बोली—"निठुर पुरुष! अब भी कुछ समझमें आता है या नहीं।"

वल्लभदासने उसे उठाकर अपनी बगलमें बैठाते हुए कहा—"सब समझमें आता है पन्ना। समझनेको कुछ भी बाकी नहीं है। आओ प्रेममयी! आजसे मैंने भी तुम्हारे लिये सब कुछ त्यागा। रहा यह मकान—सो यदि यह बात पक्की है कि यह मकान बिक रहा है तो कल ही यह तुम्हारा हो जायगा।"

पन्ना बोली—"नहीं नहीं वल्लभ बाबू! इतना बड़ा कष्ट मैं आपको नहीं देना चाहती। मैं इस बातके लिये तैयार हूँ कि किसी दूसरे मकानमें चली जाऊँगी। पर आपको न सताऊँगी। भले ही मेरा अपमान हो। दस आदमियों की वहाँ मुझपर दृष्टि पड़े परन्तु आपको इतने बड़े खर्चमें नहीं डालना चाहती।"

वल्लभदासने कहा—"खैर इन बातोंपर विचार करनेकी जरूरत अब तुम्हे नहीं है। जब तुम मेरे लिये इतना बड़ा त्याग कर सकती हो तो मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है।"

पन्ना सिसकती हुई बोली—"उस कर्त्तव्यको अभी आप एक ओर रखिये। खूब अच्छी तरह विचार लीजिये। अपनी नेकनामी बदनामी को सोचिये। आप घर गृहस्थी, बाल-बच्चेवाले आदमी है। मैं उन वेश्याओंमें नहीं हूँ कि आपका यथासर्वस्व लेकर

आपको निकाल बाहर करूँ। मैं तो प्रेम चाहती हूँ और केवल आपका प्रेम !"

वल्लभदास बोले—"इन बातोंका विचार छोड़ो। यह मकान कल तुम्हारा हो जायगा। चाहे इसका दाम कितना ही देना पड़े।'

इसी समय बाहरसे फिर किसीने दरवाजेपर आघात किया। पन्ना चौंक पड़ी। बोली—"यह कौन आ गया ?"

फिर किसीने दरवाजेमें धक्का दिया। बाहरसेही पुकारकर कहा—"मैं थियेटरसे आया हूँ। मैनेजर साहबने आपको बुलाया है।'

पन्ना खिजलायी हुई आवाजमें बोली—"उनसे जाकर कह दो कि मेरी तबियत अच्छी नहीं है। और यदि उनका काम न चले तो दूसरी का प्रबन्ध करें। मै ऐसी नौकरीपर लात मारती हूँ।" फिर वल्लभदासकी ओर देखकर बोली—"इन लोगोंने तो नाकमें दम कर दिया। यह भी कोई जीवन है। दम लेनेकी फुर्सत नहीं। अपने हृदयके देवतासे दस मिनट बैठकर बातें भी नहीं कर पाती। बाज आयी इस नौकरी से। मुझे तो यह चाहिये यह" इतना कह उसने वल्लभदासके गलेमें अपनी दोनों नाजुक बाहे डाल दीं और उनकी जाँघपर अपना माथा रख, वल्लभदासके चेहरे की ओर टकटकी लगाकर देखती हुई बोली—"ओह ! इसमें कितना सुख है, वल्लभ ! इस सुखके आगे संसारकी यावत् सामग्रियाँ फीकी हैं।'

पाँचवाँ परिच्छेद

मन की मौज

ल्लभदासका समाचार सुनाकर शारदा तो चली गयी परन्तु सुशीला पर विपत्तिका पहाड़ ढाह गयी। जिस पतिकी ओर उसने कभी सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखा था, जिसको वह सदा देवताके समान समझती थी—क्या उसी पर अब अविश्वास करे!

उस दिन शारदाके सामने ही वल्लभदास लौटकर आ पहुँचे थे। परन्तु उनका चेहरा मुर्झाया हुआ था। उनका सदाका वह हँसमुख भाव आज न जाने कहाँ चला गया था। शारदाने इसपर लक्ष्य किया। उनसे वह संकोच न करती थी। पुकारकर बोली—"आज क्या मामला है, आज यह मुख-कमल मुर्झा क्यों रहा है?"

वल्लभदास चाहते थे कि इस समय शारदासे बात न करना पड़े तो अच्छा है। परन्तु चतुरा शारदाने यह समझकर भी न समझा। बोली—"जरा इधर तो आइये, अपना हाल-चाल तो बताइये।"

लाचार वल्लभदास को आना ही पड़ा। मुस्कुराते हुए बोले—"कहो, क्या कहती हो?"

चतुरा शारदा बोली—"आज उदास क्यों हो रहे हैं? जिस पर लक्ष्मी की इतनी कृपा हो कि पन्ना-हीराकी खान भरी हो, जिसे सुशीला जैसी सद्गुणी गृहिणी प्राप्त हो, उसके चेहरेपर उदासी क्यों?"

शारदाने इतना कहकर एक तिरछी दृष्टिसे दूर बैठी हुई सुशीला की ओर देखा और फिर तुरन्त ही वल्लभदास की ओर देखती हुई बोली—"कोई नयी बात है क्या? सब कुशल तो है?"

वल्लभदास चाहते थे, कि हँसकर उत्तर दें, पर आज मानो हँसी उनका साथ छोड़कर चली गयी थी, तिसपर शारदाने जो पन्ना हीरा का नाम ले लिया, उससे उन्हें सन्देह हो गया कि कहीं इसे भी यह रहस्य मालूम तो नहीं हो गया। अतः वे संकुचित होते हुए बोले—"नहीं, कुछ तो नहीं।"

शारदाने कहा—"कुछ तो जरूर है।"

वल्लभदासने इस बार कुछ साहस बाँधकर कहा—'तू तो पगली है।"

इतना कह, उठकर दूसरे कमरेमें चले गये। शारदाने अब सुशीला की ओर देखकर कहा—"बात सत्य है, बहिन! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। अब तू सावधान रहना। वेश्याएँ धनकी भूखी होती हैं।"

इतना कह, विदा ले, शारदा तो चली गयी, पर सुशीला अत्यन्त दुःखित हो पड़ी। बहुत देरतक वह बैठी बैठी कुछ सोचती रही। इसके बाद उठ खड़ी हुई। उस कमरे की ओर गयी जिसमें वल्लभ-

दास बैठते थे। उसने देखा—वल्लभदास सर झुकाए हुए कुर्सी-पर बैठे कुछ सोच रहे हैं। आँखें बन्द हैं।

सुशीला साहस बाँध, उस कमरेमें जा पहुँची। उसने जाकर उनके कन्धेपर हाथ रखा। वल्लभदास चौंक पड़े। बोले—"क्या शारदा गयी?"

सुशीलाने कहा "हाँ गयी, चलिये स्नान कीजिये। आज क्या है जो आपकी ऐसी अवस्थामें हो रहे हैं।"

वल्लभदासने कहा—"कुछ नहीं,. सोच रहा हूँ, कि वह चित्र यहाँ कौन दे गया?"

सुशीलाने कहा—"कोई भी दे गया होगा! उसका जो उद्देश्य है, वह आप ही सामने आयगा। इसमें आपके लिये चिन्ताकी कौन-सी बात है? क्या आप जानते हैं कि वह रमणी कौन है?"

वल्लभदास क्या उत्तर दें। फिर किसी चिन्तामें जा पड़े। सुशीला बोली—"छोड़िये, उस जिक्रको। चलिये, भोजन कीजिये।"

सुशीलाका साहस और चेहरेका भाव देखकर वल्लभदासने समझा—रहस्य अभी तक छिपा है। सुशीलाको अब तक इस रमणी का परिचय मालूम नहीं है। मन ही मन बोले—कल रातमें बाहर जाना ही सब अनर्थोंकी जड़ हो गया। अब बहुत कुछ सावधान होकर रहना पड़ेगा। फिर प्रत्यक्षमें सुशीलाकी ओर देखकर बोले—"चलो?"

सुशीला का नियम था, कि वह वल्लभदासको अपने हाथों ही परसकर खिलाती थी। बिना उनके भोजन किये आप भोजन न

करती थी। आज उसने देखा - उन्होंने जी भर भोजन भी नहीं किया।

सुशीला कुछ न बोली। वह अपना कर्त्तव्य स्थिर करनेमें लगी थी। वल्लभदासने वस्त्र पहने और नियमानुसार अपना कारबार देखने चले गये।

अब सुशीला एकान्तमें जा पडी। फिर वही चिन्ताके बादल उसके सरपर मडराने लगे। वह सोचती—मेरा क्या कर्त्तव्य है? मैं किस तरह उनकी रक्षा कर सकती हूँ? परन्तु वह कोई भी कर्तव्य स्थिर न कर पाती थी। उसने शारदासे सुना था, कि वेश्याएँ धनकी भूखी होती हैं, सोचती—वह धन ही लेगी न, ले ले। क्या चिन्ता है कितना लेगी। घण्टे दो घण्टे जी बहलाकर पतिदेव वापस चले आयँगे। मैं क्यों उनके आनन्दमें बाधा डालूँ। मै तो उनके सुखसे ही सुखी हूँ।

ऐसा ही आदर्श सामने रखकर वह अपने मनको समझाने और प्रबोध देनेकी बहुत कुछ चेष्टा करती, परन्तु अपने प्रेमकी अर्द्ध-भागिनी एक दूसरी स्त्री हो जायगी—यह बात जिस समय उसके ध्यानमें आती, उस समय उसकी सारी धारणायें, उसके मन· का सारा प्रबोध बालू की दीवारकी तरह ढह पड़ता था, फिर वह उसी तरह अथाह सागरमें जा पड़ती थी।

इसी तरह सोच विचारमें सारा दिन बीत गया। एकाएक उसे खयाल हो आया—इसमें कोई षड्यंत्र तो नहीं है, कोई नयी चाल तो नहीं है। वेश्याएँ धनकी भूखी होती हैं, तो अवश्य ही मेरी कुछ

सम्पत्ति घरसे गयी होगी । सुशीला उठी । उसने अपने सारे सामान, जेवर—जवाहिरात सव देख डाले । सव ज्योंके त्यों थे । बोली—"लोग वृथा ही उन्हें कलंकित करते हैं । सव तो ज्यों का त्यों पड़ा है । एक टुकड़ा भी तो कहीं नहीं गया है । और यदि दे देंगे तो भी क्या—आखिर यह सम्पत्ति भी तो उन्हींकी है । मैं रोकनेवाली कौन ?"

सुशीला वहुत कुछ आश्वस्त हुई । उसके ऊपर विषादका जो घना वादल छाया हुआ था, वह हट गया । उसने रामूको पुकारकर दोनों वच्चोंको वुलाया । थोड़ी देरतक उनसे जी वहलाती रही । फिर मन ही मन वोली—जरा महालक्ष्मीका दर्शन कर आती तो वहुत उत्तम होता । वे ही इस विपत्तिसे मेरी रक्षा कर सकती हैं । एक बार अपने हृदयका सारा दुःख उनसे ही निवेदन कर आऊँ । पर उनसे पूछे विना कैसे जाऊँ ?

सुशीलाने रामूको आफिसमें भेजा । वोली—"मैं महालक्ष्मीका दर्शन करने जाना चाहती हूं । जरा जाकर पूछ आओ ।"

थोड़ी ही देरमें रामूने आकर कहा—"सेठने आज्ञा दे दी है । आप जा सकती हैं । मैं साथही चलूँगा ।"

सुशीलाने कहा—"वहुत अच्छा । तुम भी तैयार हो जाओ ।"

थोड़ी देरके लिये उसके मनमें एक अपूर्व उत्साह पैदा हो गया । मानो वह इसके लिये तैयार हो गयी कि जो कुछ सामने आयगा भोग लूँगी । पर क्षण भरके लिये भी अपने मनमें विषादकी छाया

न आने दूँगी और न अपने पतिदेवकी प्रसन्नताकी बाधक ही बनूँगी। उसने अपने हृदयको दृढ़ बना लिया।

सरल हृदया सुशीला इस समय फिर इतनी प्रसन्न हो उठी, मानो कुछ हुआ ही न हो। वह स्नानकर तुलसी वृक्षके पास जा पहुँची और क्षण भरतक कुछ प्रार्थना कर तुरन्त ही लौट आयी। उसने रामूको पुकारकर गाड़ी मँगवानेको कहा।

थोड़ी ही देर बाद एक बढ़िया जोड़ी गाड़ी दरवाजेपर आ लगी। सुशीला अपनी दोनों सन्तानें और रामूको साथ लेकर महालक्ष्मीके दर्शनको चल पड़ी।

इस समय संध्या होनेमें कुछ ही देर थी। व्यापारी नगर बम्बई जन-समाजकी भीड़से मुखरित हो रहा था। जोड़ी गाड़ी इन्हें लिये तेजीसे महालक्ष्मीकी ओर रवाना हुई।

छठाँ परिच्छेद
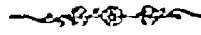
विचित्र मिलन

बम्बईसे कुछ दूर हटकर, शहरके एकान्त भागमें समुद्र-तटके किनारे, एक छोटीसी पहाड़ीपर विशाल-काय महालक्ष्मीका मन्दिर बना हुआ है। बम्बई-का यह बहुत ही विख्यात मन्दिर है। जैसी ही महालक्ष्मीकी भव्य और विशाल मूर्त्ति इस मन्दिर की शोभा बढ़ाती है, लोगोंकी धारणा है कि उसी तरह अपने भक्तोंकी हृदयाकांक्षा भी पूरी करती है। इस मन्दिरके पीछेवाले भागसे सटा हुआ ही अरब महासागर है, जिसकी उत्ताल तरंगें मन्दिरकी पिछली दीवारकी जडसे टक्कर खाती हैं। कभी कभी तो दीवार छोड़कर जल बहुत दूर आगे बढ़ जाता है। उस समय केवल पत्थरकी बड़ी बडी चट्टानें और ढोंके पडे हुए दिखाई देते हैं, जिनपर समुद्री मुक्त वायुके शौकीन बम्बईके नागरिक घण्टों बैठकर प्रकृतिकी सुन्दरता देखते और लहराती हुई तरंगोंसे अपना मनोविनोद करते हैं।

इस समय भी भाटा है, समुद्रका गम्भीर जल मन्दिरसे मीलों दूर हट गया है, बड़े बड़े विशालकाय पत्थर बहुत दूरतक इधर उधर बिखरे पड़े है। संध्या हो चली है पर अभी सूर्यास्तमें कुछ

देर है। अस्तगामी सूर्यकी किरणें फीकी पड़कर सागर वक्षपर अठखेलियाँ कर रही हैं।

इस समय एक एकान्त स्थानमें पत्थरपर दो स्त्री पुरुषोंको बैठे हुए हम देखते हैं। दोनों ही युवक हैं, दोनोंने ही यौवनमें पदार्पण कर दिया है।

स्त्रीने कहा—"राधा बाबू! आज कितनी कठिनतासे मैं आ सकी हूँ, यह मैं ही जानती हूँ।"

पुरुष बोला—"यह मैं भी समझता हूँ, परन्तु तुम्हे देखे विना मुझे कल नहीं है और खासकर कलका समाचार जाननेके लिये तो मैं बहुत ही व्याकुल हो रहा था।"

स्त्रीने कहा—"उस दिन आपने पत्रके साथ वह चित्र तो भेज दिया, परन्तु मेरा लेकर वहाँ तक जाना कठिन था। सेठकी इच्छा नहीं होती कि मै कहीं जाऊँ। आज तो वे अपने एक मित्रकी पार्टी में गये हैं, इसीसे मैं आ सकी हूँ।"

पुरुष बोला—"यह तो मैं जानता हूँ, शारदा! पर वल्लभदास केवल मेरा ही दोस्त नहीं है, बल्कि तुम्हारी सङ्गिनीका पति है, और उसे इस अधःपतनसे रोकना हम दोनोंका ही कर्तव्य है।"

शारदा बोली—"इसीलिये तो मैं भी बहुत कुछ कह सुनकर छुट्टी ले उसके पास जा पहुँची। परन्तु सुशीला बड़ी सरल है, जरा भी दाँव पेंच नहीं, जैसी भीतर वैसी ही बाहर है, उसका कष्ट मुझसे देखा नहीं जाता।"

पाठक समझ गये होंगे कि ये दोनों राधारमण और शारदा हैं।

राधारमणने शारदाकी ठुड्डीको हाथसे पकड़कर ऊपर उठाते हुए कहा—"और तुम ?"

शारदाने उसका हाथ पकड़कर एक बार सावधानीसे चारों ओर देखकर कहा—"क्या करते हो, कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?"

राधारमण बोला—"तुम तो अब दूजका चाँद हो गयी हो। बड़ी कठिनाईसे मिलती हो। खैर, फिर क्या हुआ।"

शारदा बोली—"हुआ क्या, वह चित्र तो रातमें ही कोई भयानक मनुष्य उसके पास पहुँचा गया था।"

राधारमणने कहा - "ऐसा !"

शारदा बोली—"हाँ, वह चित्र मैंने उसके पास देखा है। उसके साथ ही एक पत्र भी था पर शारदा यह नहीं जानती थी कि वह चित्र किसका है।"

राधारमण प्रसन्न होता हुआ बोला—"ओह ! यह काम तुमने कर दिया ?"

शारदा बोली—"क्या बताऊँ, इच्छा तो नहीं थी। मैं उसके सुखी परिवारमें यह विष-वृक्ष नहीं बोना चाहती थी। पर तुम्हारा यह अनुरोध न टाल सकी।"

राधारमणने कहा—"मेरा तो कोई स्वार्थ नहीं है शारदा ! मुझे तो ये षड़यंत्र इसलिये रचने पड़े हैं कि वल्लभदासकी रक्षा हो, एक भला घर सत्यानाश न हो जाये और तुम्हारी संगिनी सुशीला एक गहरी विपत्ति से बच जाये।"

इतना कह राधारमण गौरसे शारदाका चेहरा देखने लगा।

शारदा बोली—"ऊपरसे तो बात ऐसी ही मालूम होती है परन्तु तुम्हारी दुरभिसन्धि कौन समझ सकता है? सुशीला भी कम सुन्दरी नहीं है और तुम कम नटखट नहीं।"

राधारमणने दाँतों तले जीभ दबाते हुए कहा—"तुम क्या मुझे इतना बड़ा पापी समझती हो।"

शारदा बोली—"कह नहीं सकती, क्या बात है। उस रातमें वह चित्र उसके पास कौन पहुँचा गया। तुम्हें खबर है?"

राधारमणने कहा—"तुम्हीं सोचो कि मुझे ये प्रपच करनेकी जरूरत ही क्या है। तुम्हे भी सुशीलाके पास केवल इसीलिये भेजा था कि वह सावधान हो जाये और अपनी सम्पत्तिको रक्षाका प्रबन्ध करे।"

शारदाने कहा—"कुछ भी हो, तुम्हारी बात मैं उठा नहीं सकती थी। इसलिये तुम्हारा काम कर आयी। अब आगे राम जाने। परन्तु उस दिन सुशीलाका जो भाव मैं देख आयी हूँ, वह जीवन भर याद रहेगा।"

राधारमणने कहा—"रहने दो इन बातोंको—यह तो स्त्री-चरित्र हैं। क्या तुम अपने पतिको प्यार नहीं करतीं। उनके लिये इतनी ही चिन्तित नहीं रहतीं।"

शारदाने कहा—"उस वृद्धकी बात न उठाओ। मेरी तो बात ही छोड़ दो—पर सुशीला! मैं फिर कहती हूँ कि वह खरा सोना है। उसके सत्यका तेज उसके चेहरेपर झलकता है। मेरा उसकी ओर देखनेका साहस नहीं होता।"

राधारमणने बात बदलनेके बहाने कहा—"खैर, मुझे इन बातोंसे क्या मतलब है। तुम इतना ही बता दो कि उस दिन और क्या हुआ?"

शारदा बोली—"हुआ क्या? पहले तो वह इनकार करती गयी कि ऐसा नहीं हो सकता परन्तु फिर उसे स्वीकार करना ही पड़ा।"

राधारमण एक व्यंगकी हँसी हँसता हुआ बोला—"अर्थात् वल्लभदास दुराचारी है, एक वेश्याके मायाजालमें फँसा हुआ है। फिर तो वह बहुत ही क्रोधित हो उठी होगी।"

शारदाने गम्भीर भावसे कहा—"क्रोध तो सुशीलाके चेहरेपर कभी दिखाई ही नहीं देता। क्रोध तो तब होता है, जब मनुष्य अपना अधिकार खोजता है, परन्तु जहाँ सेवा-भाव और प्रेम है, वहाँ क्रोध पैदा ही नहीं होता। हाँ, पति-निन्दा सुनकर उसे दुःख अवश्य हुआ।'

न जाने क्यों शारदाकी आँखोंसे भी इस समय आँसुओंकी कई बूँदें टपक पड़ीं। बोली—'सुशीलाको देखकर इच्छा होती है कि हाय! मैं भी वैसी ही क्यों न हुई।"

राधारमणने तिरछी दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए कहा—"अब क्या पछता रही हो?"

शारदाने दुःखित स्वर में कहा—"कहीं जीवन भर पछताना न पड़े। पुरुष-जाति का क्या विश्वास।" इतना कह, उस अगाध जलराशि की ओर टकटकी लगाकर वह कुछ देखती रही। बहुत देर तक इसी

तरह देखते रहनेके बाद बोली—'न जाने किस कुसायतमें तुमपर दृष्टि पड़ी थी राधारमण ! कि अपना सब कुछ भूल गयी।"

राधारमणने कहा— इसका दोषी मैं नहीं, बल्कि तुम्हारे माता पिता हैं, जिन्होंने तुम्हें उस वृद्धके गलेमें बाँध दिया। इसी-लिये, तो वह तुम जैसी चिड़ियाको पींजड़ेमें बन्द कर रखना चाहता है, किसीकी तुमपर दृष्टि नहीं पड़ने देना चाहता, और हमेशा सतर्क रहता है, कि किसी की छाया तुम पर न जा पड़े।"

शारदा बोली—'यह उनका प्रेम है।"

राधारमणने कहा—'प्रेम नहीं, सन्देह है। और सन्देहका बदला सन्देहसे ही मिलता है। शारदा, सशयात्माका नाश होता है। अब तक सुशीलाके हृदयमें अपने पतिकी ओरसे जरा भी सन्देह न था, जरा भी अन्तर न था, अतएव दोनों एक जान दो कालिब हो रहे थे, परन्तु अब तुम देखना—पद-पदपर सदेह, विवाद और कलह होगी। उस समय तुम देखोगी—जिसकी क्षण-क्षणमें प्रशसा करती हो—उसका वास्तविक रूप देखोगी और समझोगी कि यह ससार क्या चीज है। दु:ख न करो, शारदा ! यह जीवन भगवानने आनन्द करनेके लिये दिया है, फिर तो एक दिन इस विशाल सागरके तटपर हमलोगोंका समाधि-मन्दिर बनेगा ही।'

शारदा बोली— जो हो, आग तो लगा आयी हूँ। अब तुम तमाशा देखना।"

राधारमणने कहा—"परिताप न करो शारदा ! सब दिन एकसे नहीं जाते।"

इस समय संध्या हो गयी थी। अस्तगामी सूर्यदेवकी सुनहरी किरणें सागर वक्षपर अठखेलियाँ कर रही थीं। महालक्ष्मीके पीछे समुद्र-तटके जिस स्थानपर बैठकर ये प्रणयी युगल बातें कह रहे थे, ठीक उसी स्थानके पास ही महालक्ष्मीकी प्रदक्षिणा कर हाथमें नारियल वताशा लिये सुशीला भी सागर देवको नारियल चढ़ानेके लिये उतर पड़ी। इस समय वह अकेली ही थी। अपनी दोनों सन्तानोंको रामूके सुपुर्द कर वह समुद्र-पूजनके लिये आयी थी। जल इस समय कुछ दूर हटा हुआ था, अतएव कुछ आगे बढ़कर उसे नारियल चढ़ाना पड़ा। नारियल चढ़ाने बाद सूर्यदेवको प्रणाम और कुछ प्रार्थनाकर ज्योंही वह लौटी त्योंही उसकी दृष्टि शारदा पर पड़ी।

इस समय दोनों ही उस स्थानसे चलनेकी तैयारी में थे। शारदा खड़ी हो, राधारमणसे कुछ कह रही थी।

शारदाको उस स्थानपर और वह भी राधारमणके साथ देखकर सुशीला चौंक उठी। राधारमणकी प्रकृतिसे वह अच्छी तरह परिचित थी। उसी राधारमणके साथ, इस एकान्त स्थानमें, अपनी संगिनी शारदाको देखकर सुशीला कुछ अचरजमें आ गयी। मन ही मन बोली—"यह कैसा काण्ड है! उस दिन मेरे यहाँ आकर मेरे पतिपर दोष लगा गयी, आज राधारमणके साथ इस तरह एकान्तमें बातें कर रही है।"

सुशीलाको सन्देह हो गया कि शारदा अधःपतनके पथपर अग्रसर हो रही है। उसके परितापकी सीमा न रही, वह शारदाको

वहुत प्यार करती थी। दोनों वाल सखियाँ, अभिन्न हृदय हो रही थीं। आज उसी शारदाको इस अवस्थामें देख सुशीला काँप उठी। उसकी इच्छा हुई कि उसको बुलाकर कुछ कहे, परन्तु मौका न देख वह चुपचाप सर झुकाए सीढ़ी चढ़कर महालक्ष्मीके मन्दिरमें आ पहुँची। इस समय उसके मनपर गहरी चोट पहुँची थी। अतएव मन्दिरमें लौट, महालक्ष्मीकी मूर्तिके पास खड़ी हो अपने पति तथा शारदाकी मंगल-कामनासे वह कुछ देरतक प्रार्थना करती रही। इसके वाद ज्योंहीं लौटकर वाहर निकली त्योंही शारदापर उसकी दृष्टि पडी। इस समय शारदा अकेली थी। राधारमण कहीं चला गया था।

शारदाने भी सुशीलाको देखा। वह तो स्तम्भित हो गयी। चेहरा उतर गया। मनकी सारी प्रसन्नता—चेहरेका सम्पूर्ण तेज कहीं गायव हो गया। उसे स्वप्नमें भी यह आशा न थी कि सुशीलासे यहाँ भेंट होगी। वह सोचती थी कि सुशीला घोर दुःख से अधमरी-सी घरके किसी कोनेमें पड़ी होगी। उसी सुशीलाको एकाएक हँसते हुए प्रसन्न वदन देखकर शारदाका अन्तरात्मा काँप उठा। ऐसा ही होता है। अनाचार इसी तरह हृदयके वलको हरण कर लेता है।

सुशीलाने शारदाका हाथ पकड़ लिया। बोली—“अभी दर्शन किया है, या नहीं?”

शारदाने इसका कोई उत्तर दिये विना ही पूछा—“तुम्हें इधर आये कितनी देर हुई? क्या अकेली ही आयी हो?”

सुशीला हँस पड़ी। बोली—"मेरी बात का जवाब दिया ही नहीं, सवालोंकी झड़ी लगा दी। मुझे आये, बहुत देर हुई।"

शारदाने अपनेको बहुत कुछ सम्हालते हुए फिर पूछा—"क्या दर्शन कर चुकी और समुद्र-पूजन ?"

इस बार शारदाकी यह चतुरता सुशीला को बहुत बुरी मालूम हुई। बोली—"मैं दर्शन भी कर चुकी, समुद्र-पूजन भी। यह तो दूसरी बार मन्दिरमें घुसी थी और वह भी तेरे लिये मातासे प्रार्थना करने।'

शारदाने चकित होकर पूछा—'मेरे लिये, मेरा क्या बिगड़ा है ?'

सुशीलाने कुछ रोषसे कहा—'अभी नहीं बिगड़ा है, तो राधारमणका साथ रहनेपर बिगड़ ही जायगा।"

शारदाके चेहरेपर जो कुछ रंगत थी, वह भी उतर गयी। परन्तु चतुरा शारदा तुरन्त ही बोल उठी—"इसका क्या मतलब ?"

सुशीलाने कहा—' इससे अधिक कुछ कहना उचित नहीं है। तू मेरी बहनके समान है। इसलिये इतना कह दिया। अपना भला चाहती है, तो उस दुराचारी का संग त्याग दे।"

इतना कह, सुशीलाने अपने एक लड़केका हाथ पकड़ा और तेजीसे अपनी गाड़ीकी ओर रवाना हो गयी। दूसरी सन्तानको रामू गोदमें लिये था।

शारदा उसी स्थानपर खड़ी खड़ी क्रोध-भरी दृष्टिसे उसे तब तक देखती रही जब तक सुशीला दिखाई देती रही। इसके बाद मन ही मन बोली—"इतना मान! मुझे ही शिक्षा देने चली है, अच्छा समझ लूँगी।"

पर सरल हृदया सुशीलाको यह स्वप्नमें भी आशा न थी, कि यह इतनी सरल सीख भी शारदाको बुरी लगेगी। वह उसकी बाल सगिनी थी—दोनों ही अपने हृदयकी बात सदासे एक दूसरे-से कहती आयी थीं, परन्तु समय ही तो है, आज सुशीलाकी इस सीखने कुछ और ही गजब ढाया और शारदाके हृदयमें वह विद्वे-षाग्नि पैदा कर दी, जिसकी आँचमें शारदाको तो जलना ही पड़ा, साथ ही सुशीलाके शरीरपर भी कम लपटें न लगीं।

महालक्ष्मीके मन्दिरसे वह स्थान कुछ दूर पड़ता है, जहाँ गाड़ियाँ खड़ी होती हैं। यह इतना पथ पैदल ही चलना पड़ता है। इस समय अँधेरा हो चला था। सुशीला रामूके साथ सड़ककी ओर चली। राहमें वह यही सोचती जाती थी कि शारदाका यह अधःपतन कैसे हुआ।

जिस समय वह अपनी गाड़ीके पास पहुँची, उसी समय कुछ दूरपर खड़ी एक जोड़ी गाड़ीपर भी उसकी दृष्टि पडी। उसने देखा—एक सुन्दर बड़ी जोड़ी गाड़ीमें राधारमण बैठा हुआ है।

सुशीलाने अपना मुँह फेर लिया। रामूसे कहा कि जल्दी गाड़ी बढ़ाओ। थोड़ी ही देरमें सुशीलाकी गाड़ी तेजीसे आगे बढ आयी।

इस समय भरपूर अँधेरा हो गया था। सुशीला तेजीसे अपने घरमें आ पहुँची। उसे आशा थी, कि उसके पतिदेव घर आ गये होंगे, परन्तु उस समय तक वल्लभदास घर न लौटे थे। थोड़ी ही देर बाद वल्लभदास घर आये और अपने नित्यके कामोंसे निवृत्त हो, कपड़े पहन बाहर जाना ही चाहते थे, कि सुशीला उनके सामने

जा खड़ी हुई। वल्लभदासका नियम था, कि वे आफिससे लौटकर वहुत देर तक सुशीलासे बातें करते थे। पर आज उन्होंने सुशीला को देखकर इतना ही कहा कि मुझे एक आवश्यक कार्यसे अभी वाहर जाना है, आनेमें कुछ देर हो सकती है। अतएव, तुम साव-धान रहना। रामू है ही कोई चिन्ता की बात नहीं है।

इतना कह वे तुरन्त ही बाहर चले गये। सुशीला ज्योंकी त्यों खड़ी रह गयी।

सातवाँ परिच्छेद

बदला
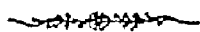
सारी रात बीत गयी, पर बल्लभदास लौटकर न आये। सुशीला उनकी राह देखती एक प्रकार से रातभर जागती ही रह गयी। रामू भी चिन्तित होकर बार बार उससे पूछता परन्तु कोई ठीक ठीक उत्तर न पाकर लौट जाता था। सुशीला जानती थी कि राधारमण तथा बल्लभदासमें अत्यन्त घनिष्टता है, शायद वहाँ उनका पता लग जाये पर राधारमणके यहाँ किसी को भेजनेका उसे साहस ही न होता था। देखते देखते और चिन्ता करते, दिन बीत गया और फिर रात आ गयी, पर बल्लभदास न लौटे। अब सुशीला अत्यन्त व्याकुल हो उठी। कितने ही देवताओं-की मिन्नतें मानीं परन्तु कुछ लाभ न हुआ। वह सोचती—वे कहाँ चले गये जो आज दिनमें भी न आये? दिनमें उसने कई बार आफिसमें आदमी भेजे, पर वहाँ भी यही पता लगा, कि एक बार दस मिनिट के लिये आये थे, फिर कहाँ गये, पता नहीं। उसकी चिन्ताकी मात्रा बढ़ती ही चली गयी। वह व्याकुल हरिनी की तरह इधर उधर तड़पने लगी।

एकाएक उसके ध्यान में पन्ना आ गयी। कहीं पन्ना के यहाँ ही तो वे नहीं फसे हैं? तब क्या शारदाकी बात सत्य है? तो क्या वहीं किसीको भेजूँ? पर वह कहाँ रहती है, यह भी तो नहीं मालूम और क्या यह समाचार रामूपर प्रकट करना अच्छा होगा। नहीं, यह मेरा किया तो न होगा—मैं अपने मुँहसे यह पाप-कथा न निकाल सकूँगी।

सुशीला हताश होकर एक ओर बैठ गयी। एकाएक रामू उसके सामने आकर खड़ा हो गया। कुछ गम्भीर आवाजमें बोला "बहूजी! बाबू का तो कोई पता नहीं है।"

सुशीला ने उसकी ओर देखा और आँखों से आँसू टपाटप गिरने लगे।

रामूने फिर कहा—"ऐसा तो कभी न हुआ था। आपको कुछ मालूम हो तो बताइये। वहाँ खोजने जाऊँ?"

सुशीला फिर भी चुप ही रही। उसके आँसुओंने और भी प्रबल वेगसे बहना आरम्भ किया।

रामूने कहा—"बाबू आफिसमें दस मिनिटके लिये आये। बक्स खोल कर कुछ रुपये निकाले, एक चेक लिखा और तुरन्त लेकर चले गये।"

सुशीलाने कहा—'हूँ।"

रामू बोला—"मुझे मालूम होता है, आप कुछ जानती अवश्य हैं पर कहना नहीं चाहतीं। बताये बिना मैं क्या कर सकता हूँ।"

सुशीलाने कहा—"मैं कुछ नहीं जानती रामू ! इतना ही जानती हूँ, कि मैंने उनकी सेवामें कोई त्रुटि नहीं की।"

रामूकी आँखोंसे भी आँसू निकल पड़े। बोला—"यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। पर कहाँ खोजने जाऊँ ? कुछ पता हो तो बताइये।"

सुशीला चुप हो रही। कुछ देरतक कुछ सोचते रहनेके बाद बोली—"इतनी बड़ी नगरीमें उन्हे कहाँ खोजोगे ? जाओ बैठो !"

इतना कह सुशीला फूट फूटकर रोने लगी। रामूसे यह देखा न गया। कुछ समझा बुझाकर दोनों बच्चों को लेकर उस कमरेसे निकलना ही चाहता था, कि एकाएक वल्लभदास आ पहुँचे।

वल्लभदासका चेहरा इस समय तमतमाया हुआ था, आँखें कुछ लाल सी हो रही थीं। वे सीधे धड़धड़ाते हुए कमरेमें चले आये। रामू उन्हें देखकर खिसक गया। सुशीला उठ खड़ी हुई।

वल्लभदासने सुशीलाकी ओर देखा। देखा, कि अब भी उसके आइनेसे चमकीले गुलाबी गालोंपर मोतियोंसी आँसूकी बूँदें लुडक रही हैं। आमकी फाँकीसी दोनों आँखें लाल कमल जैसी हो रही हैं। बोले—"यह क्या सलाह हो रही थी ?"

सुशीलाने आँखें पोंछते हुए कहा—"आपकी ही चिन्ता कर रही थी। आज चौबीस घण्टोंपर दर्शन मिले हैं। खोजने आदमी भेजना चाहती थी, पर कहाँ भेजूँ।"

वल्लभदासने कहा—"इसकी जरूरत ही क्या है। मैं तो कहीं भाग नहीं गया था, और घरमें किसी चीजकी कमी नहीं है, जिसके लिये मेरी खोजकी जरूरत आ पडी थी।"

सुशीला कातर हो पड़ी। ऐसा उत्तर उसने कभी न सुना था। बोली—"आप कुछ अप्रसन्नसे मालूम होते हैं ? मुझसे क्या कोई अपराध हुआ है ?"

वल्लभदास बोले—"अपराध वपराध मैं नहीं जानता। मै इतना ही जानना चाहता हूँ, कि तुमलोग अभी क्या सलाह कर रहे थे।"

सुशीलाका माथा ठनका। यह क्या बात है ? आज ये ऐसे क्यों हो रहे हैं ? बहुत ही गिड़गिड़ाकर बोली—"हमलोग आपके विषयमें ही चिन्ता कर रहे थे।"

वल्लभदासने क्रोधसे कहा—"झूठी बात, सुशीला! सब झूठी! मैं अच्छी तरह जानता हूँ, आजकल कहाँ क्या हो रहा है ?"

अब सुशीला सहन न कर सकी। उसने लपककर वल्लभदासके पैर पकड़ लिये। बोली—"नाथ! ऐसी बात नहीं! मेरा अपराध क्षमा हो, पर ऐसी बात न कहें। जो कहना हो, स्पष्ट कहें। किसी असंगल की आशंका से मेरा हृदय काँप रहा है ? मै अब नहीं सहन कर सकती।"

वल्लभदास ने कहा—"ये सब दिखौआ बातें हैं। इस समय मुझे बैठनेका समय नहीं, फिर बताऊँगा, पर सावधान!"

सुशीला काँप उठी। उसके हाथसे अचानक आप ही आप पैर छूट गये। बोली—"मेरा अपराध स्पष्ट बता दें।"

वल्लभदासने कहा—"जरूर बता दूँगा पर आज नहीं। अच्छा आलमारीकी चाभी कहाँ है ?"

सुशीलाने आँचलसे निकालकर चाभी देते हुए कहा—"मैं धन नहीं चाहती, धनकी भूखी नहीं हूँ। पर आप इस समय कहीं न जायें। आपका चेहरा बेतरह लाल होरहा है, कुछ तबियत तो नहीं खराब है।" इतना कह वह घूमकर उनके माथे पर हाथ रखने जाना ही चाहती थी कि एकाएक वल्लभदासके मुँहसे ऐसी गन्ध आयी कि वह झिझककर पीछे हट गयी। बोली—"आज आपने क्या खाया है?"

वल्लभदासने आँखें तरेर कर सुशीलाकी ओर देखा। बोले— "अब क्या अपने सभी कामोंका जमा-खर्च बताना पड़ेगा?"

सुशीला चुप हो रही। वल्लभदासने उठकर आलमारी खोली। उसमेंसे हीरेका एक जड़ाऊ कण्ठा निकाला और उस कमरेसे जाना ही चाहते थे कि सुशीला रास्ता रोककर खड़ी हो गयी। बोली— "इस इतनी रातके समय यह लाख पचास हजारकी सम्पत्ति लेकर अकेले न जाइये। रामू या किसी दूसरे जमादार को साथ लेते जाइये।"

वल्लभदास गर्म हो उठे। चिढ़कर बोले—क्यों, क्या अब तू मुझे बुद्धि सिखायेगी? तेरी आज्ञामें मुझे चलना पड़ेगा?"

सुशीलाने कहा—"नहीं, आपके भलेके लिये ही कहती हूँ। इस समय आप अपनी सुधि-बुधमें नहीं हैं। नहीं तो यह लाख रूपयेकी सम्पत्ति लेकर इस समय कभी न जाते। मैं जानेमें बाधा नहीं देती, पर आपकी रक्षा करना भी मेरा कर्तव्य है।"

वल्लभदासने क्रोधसे पूछा—"तू जानती है, मैं इसे कहाँ ले जाता हूँ।"

सुशीलाने बहुत शान्तिसे कहा—"दासीको यह जाननेका अधिकार नहीं है, जानना भी नहीं चाहती। आपकी चीज है, आप ले जायें, पर आपकी रक्षा पर ध्यान रखना मेरा कर्तव्य है।"

"और इस पर ध्यान रखना कर्तव्य नहीं है।" कहते हुए वल्लभदासने जोरसे एक लिफाफा निकालकर सुशीलाके मुँह पर दे मारा और उसी तरह आलमारी खुली छोड़ तेजीसे उस कमरेके बाहर चले गये।

लिफाफा सुशीलाके कपालकी ठक्कर खाकर जमीनमें गिर पड़ा। वह हतबुद्धि सी खड़ी कुछ देर तक बाहर की ओर देखती रही मानो यह क्या घटना घट गयी, यह उसकी समझमें ही नहीं आया। बहुत देर तक वह खड़ी खड़ी एकटक दृष्टिसे शून्यकी ओर देखती रही। मानो उसमें कुछ ज्ञान ही न हो। इसके बाद वह एकाएक इस तरह होशमें आ गयी मानो उसे कुछ खयाल हो आया हो। उसने पहले आगे बढ़कर आलमारी बन्द की। इसके बाद वह जमीनमें पड़ा हुआ लिफाफा उठा लिया। उसे फाड़ डाला। उसके भीतर एक बड़े ही सुन्दर युवकका चित्र था और वल्लभदासके नामका एक पत्र। लिफाफे पर भी वल्लभदासका ही नाम खिला था।

चित्र देखते ही सुशीला चौंक पड़ी। यह किसका चित्र है? और इस चित्रकी यहाँ क्या जरूरत है? सुशीलाने हाथ डालकर लिफाफेके भीतरसे पत्र निकाला। पत्रमें इतना ही लिखा था—"कुछ

अपने घरकी भी खबर है, जरा अपनी हृदयेश्वरीसे पूछना कि यह चित्र किसका है—तुम्हारा स्नेही।"

सुशीला पत्र पढ़कर काँप उठी। यह कौन है जो इस परिवारका इस तरह नाश करने को तैयार हुआ है। मुझसे क्यों पूछने कहा है? मैं क्या जानूँ कि यह किसका चित्र है? मुझसे इस चित्रसे क्या मतलब! सुशीला बहुत घबरा उठी। हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करने लगी। प्रार्थना करतो करती ही न जाने किस तरह अचेतन्य हो पड़ी। कबतक इस अचैतन्य अवस्थामें पड़ी रही कुछ ठिकाना नहीं! आज दिन भरसे उसके मुँहमें अन्नका दाना नहीं गया था। वल्लभदासकी राह देखते ही समूचा दिन बीत गया था। तिसपर यह कलक। उसका मन ग्लानिसे भर गया था। उसके होश हवास गायबसे हो रहे थे। एकाएक वह घबराकर उठ बैठी। उसका छोटा बच्चा जोरसे चीख उठा। सुशीला लपककर उसके पलगके पास जा पहुँची। देखा—माथेसे खून बह रहा है। इसे चोट कैसे लगी। कुछ कारण समझमें नहीं आता था। कारण ढूँढते ढूँढते सामनेकी खिड़की पर उसकी दृष्टि गयी। देखा—खिडकी खुली है और उस पर भी एक बड़ा सा लिफाफा रखा हुआ है और उसी रातवाली वे भयकर आँखें उसकी ओर देख रही हैं।

सुशीला जोरसे चिल्ला उठी। रामू को पुकारा। बोली—"देखो बाहर खिड़कीके पास कौन है? रामू तथा अन्य नौकर-चाकर दौड़कर बाहर निकले परन्तु अबतक वह मूर्ति अदृश्य हो चुकी थी। सुशीलाने रामूकी दृष्टिसे बचनेके लिये वह लिफाफा उठाकर बिछा-

वनके नीचे छिपा दिया। जब वाहर कोई न दिखाई दिया तब रामू किवाड़ बन्दकर भीतर आ पहुँचा। बोला—"कोई तो नहीं है?"

सुशीलाने बच्चेका माथा धोकर पट्टी बाँधी। चोट बहुत सामान्य थी। सुशीलाको जगानेके उद्देश्यसे ही बच्चे पर ककड़ा फेंकी गयी थी। अतएव, सुशीलाने फिर उसे पुचकारकर सुला दिया।

रामूसे बोली—"देखो तुमलोग जरा सावधान रहना। मुझे भय मालूम होता है।"

रामू चिन्तित भावसे बाहर चला गया। सुशीलाने भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया। खिड़की भी बन्द कर ली। फिर बिछा-वनके नीचेसे उसने लिफाफा निकाला। आज उसमें केवल एक पत्र था, जिसमें लिखा था—"मैं तुम्हारा बहुत बड़ा शुभचिन्तक हूँ। इसीलिये पहले ही सावधान कर दिया था। तुम सावधान न हुई और वल्लभ-दासको इस दुराचारसे रोकनेकी चेष्टा नहीं की। आज उन्होंने तीन लाखका एक मकान पन्नाके लिये खरीद दिया और कल तुम्हारा हीरेका जड़ाऊ कण्ठा भी चला जायगा। अब भी सावधान!! तुम्हारा शुभचिन्तक।"

सुशीलाने पत्र पढ़ा और बिछावन पर रख दिया। मन ही मन बोली—"चला क्या जायगा, कण्ठा चला गया।" पर यह कौन है जो उनकी सब कार्रवाइयोंकी खबर रखता है और फिर मेरे पास ये खबर पहुँचानेका क्या कारण है? मैं क्या कर सकती हूँ? मेरा उनपर क्या अधिकार है? उनकी सम्पत्ति है वे खर्च करें—यह पन्ना……"

न जाने सुशीला कितना और क्या क्या सोच गयी। सोचते सोचते ही उसे नींद आ गयी। एकाएक किसीने जोरसे दरवाजेमें धक्का दिया। सुशीला चौंक पड़ी। इतना वह कभी न सोयी थी। सबेरा हो चुका था और सूर्यदेव आकाशमें ऊँचे उठ आये थे।

सुशीलाने उठकर दरवाजा खोल दिया। सामने ही वल्लभदास खड़े थे। परन्तु इस समय उनके हाथमें वह कण्ठेका बक्स न था।

आठवाँ परिच्छेद

रहस्य भेद

ल्लभदासको देखते ही आँचल सम्हालती सुशीला दरवाजेसे हटती हुई बोली—"आपको क्या बहुत देर तक खड़े रहना पड़ा। आज जरा नींद लग गयी।"

वल्लभदासने इस बात का कोई उत्तर न दिया और कमरेमें आकर कुर्सी पर बैठ गये। इस समय भी उनका चेहरा भर्राया हुआ था, आँखें चढ़ी थीं और ऐसा मालूम होता था, मानो सारी रात उन्होंने जागकर ही बितायी हो।

आते ही वल्लभदासने कहा—"क्या वह पत्र पढ़ा?"

सुशीला बोली—"हाँ, देख लिया?"

वल्लभदासने जरा व्यंगसूचक शब्दोंमें कहा—"पहचाना, किसका चित्र है?"

सुशीला बोली—"यह तो आप उससे ही पूछें, जिसने आपको पत्र दिया है। मुझे क्या मालूम कि यह चित्र किसका है?"

वल्लभदासने कहा—"तुम सीधी तरह नहीं बताओगी। तुम्हारे लिये कुछ उपाय करना होगा।"

वल्लभदासकी बात सुशीलाको बहुत बुरी मालूम हुई, पर उसने अत्यन्त नम्रतासे कहा—"आप स्वामी हैं, जो चाहे सो करें।"

वल्लभदास झुँझला उठे। बोले—"तब क्या पत्र देनेवाला झूठा है ?"

अब सुशीला अपनेको नहीं रोक सकी। बोली—"जब मनुष्यके दिन बुरे आते हैं तब उसके मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। उस दिन मेरे पास कोई पत्र डाल गया कि इस चित्रवालीका परिचय अपने पतिदेवसे पूछना और आज आपके पास एक पत्र भेजा गया कि चित्रवालेका परिचय अपनी स्त्रीसे पूछना। इन बातोंमें क्या रहस्य है, यह कौन बता सकता है।"

वल्लभदास थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे। इसके बाद बोले—"तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि इस युवकको तुम नहीं जानतीं।"

सुशीला जमीन पर बैठ गयी और वल्लभदासके पैरों को पकड़ कर बोली—"मैं इन चरणोंको स्पर्श कर कह सकती हूँ कि मैं नहीं जानती। सुशीलाने इस जीवनमें असत्य पर कभी पैर नहीं बढ़ाये।"

वल्लभदासने पैर खींच लिये। बोले—"स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति, मैं तो आखिर मनुष्य हूँ।"

सुशीलाने घबड़ाकर कहा—"तो क्या आपको मुझपर अब विश्वास नहीं रहा! खूब स्मरण रखियेगा—मैं पन्ना नहीं हूँ।"

हृदयके आवेशमें सुशीलाको जो न कहना चाहता था, वही

मुँहसे निकल पड़ा। पर अब क्या हो सकता था। तीर निशाने पर चल चुका था। तुरन्त ही फिर बोली—"मेरे स्वामी! मुझे यह नाम मुँहसे निकालनेका कोई अधिकार नहीं है परन्तु क्या होनेवाला है जो शत्रु इस घरके पीछे इस तरह हाथ धोकर पड़े हैं। आज इतने बड़े कलंक की बात यदि आप मुँहसे न निकालते तो वही अच्छा होता।"

वल्लभदास सन्न हो गये। काटो तो खून नहीं। पर तुरन्त ही उन्होंने अपनेको सम्हाला। बोले—"पन्ना कौन?"

सुशीलाने रोते हुए कहा—"नाथ, अपराध होगया जो उसका नाम मुँहसे निकल गया। पर सच तो यह है कि कोई भी रमणी अपने ऊपर मिथ्या कलंक नहीं सह सकती।" इतना कह हाथ जोड़ती हुई फिर बोली—"मैं सब जानती हूँ, सब सुना है, पर आप—स्वामी हैं—मैं आपकी आश्रिता। एक दुराचारिणीके फेरमें पड़कर, किसी दुष्टकी बातोंमें आकर मुझपर कलंक न लगाइये।"

इतना कह वह तेजीसे उठ खड़ी हुई। जाकर बिछावनके नीचेसे लिफाफा उठा लायी और वल्लभदासके हाथमें देती हुई बोली—"आप तो रातमें बाहर रहते हैं पर आपके विरुद्ध षड्यंत्र चल रहा है, शत्रुओंकी आप पर दृष्टि है! सावधान हो जाइये। इन बच्चोंकी ओर देखिये। कल रातमें बच्चेका माथा फूट गया है, किसीने बाहरसे ईंट मारी और यह पत्र फेंक गया।"

वल्लभदासने पत्र जोरसे एक ओर फेंक दिया और पैर पटक

कर बोले—"झूठ सब झूठ" परन्तु उनका चेहरा कह रहा था कि इसमें एक अक्षर भी असत्य नहीं है।

सुशीलाने कहा—"ठीक है। ईश्वर करे झूठ ही हो, मेरे स्वामी पर कलकका एक धब्बा भी न लगने पाये, परन्तु नाथ! उसी तरह यह पत्र भी झूठ है और ' ...."

वल्लभदास बीचमें ही गरजकर बोल उठे—"तो क्या अपना कलंक छिपानेके लिये मेरे विरुद्ध यह प्रमाण पेश कर रही है?"

सुशीलाने कहा—"नहीं, पहला पत्र भी आपको दिया था और यह दूसरा भी आज दे दिया। जब आपको ही मुझपर सन्देह है, तो अब मेरा कलंक तो परमात्मा मेट सकता है।"

इसी समय दरवाजा खुला और रामू सामने आकर खडा हो गया। वल्लभदास रामूसे दबते थे। उनके पिता के समयका आदमी था। बोला—"बाबू! मैं नौकर हूँ, पर सब रग ढग देख रहा हूँ। मेरी सती मालकिन पर जो कलक लगायेगा, उसकी जबान गलकर गिर पड़ेगी।"

वल्लभदास चुप हो गये। थोड़ी देर बाद बिगड़कर बोले—"तू भीतर क्यों आया?"

रामूने कहा—"कई दिनोंसे बहूजीकी हालत देख रहा हूँ। लड़के बिलखते हैं, घर मानो उजाड़ हो रहा है, आपकी चिन्तामें पगली हो रही हैं, दो दिनसे मुँहमें अन्न नहीं पड़ा। तिसपर यह कलंक! किसने आपसे कहा है, बताइये, उसकी जबान तराश लूँ।"

पर वल्लभदासका इस समय दिमाग खराब हो रहा था।

स्वामिभक्त रामू की बातें उन्हें सहन न हुईं। विगड़कर बोले—"तुम पर विश्वास करनेका ही यह नतीजा हुआ है। तुम दोनों मिले हो।"

रामू क्षण भर तक खड़ा खड़ा कुछ सोचता रहा। इसके बाद बोला—"मैं पहले ही समझ गया था कि अब इस घरके बुरे दिन आये हैं। परन्तु यह मैं फिर कहूँगा बाबू! कि आप रातका बाहर जाना छोड़ दें। नहीं तो दुश्मन इस घरको उजाड़ डालेंगे।"

वल्लभदास विगड़कर कुर्सीसे उठ खड़े हुए। गरजकर बोले "मैं आज्ञा देता हूँ कि तू अभी यहाँसे चला जा।"

रामूने सर झुका लिया। एक वार कातर दृष्टिसे सुशीलाकी ओर देखा। फिर दोनों बच्चोंको प्यार किया। इसके बाद, वह अपनी सामग्री उठाकर वहाँसे चला गया। इस समय उसकी आँखोंमें आँसू भर रहे थे। रह रहकर वह बच्चोंको देखता और सिसकियाँ भरता हुआ चला जा रहा था।

वल्लभदास कुछ देरतक खड़े खड़े उसकी ओर देखते रहे। जब वह दृष्टिकी ओट हो गया तो बोले—"समझता था कि मैं ही इस घरका मालिक हूँ। अब मालूम होगा।"

वे फिर कुर्सी पर बैठ गये। सुशीलाकी ओर देखकर बोले—"रोनेसे काम न चलेगा, मुझे बताना पड़ेगा, कि यह चित्र किसका है और तुम्हारा इसका क्या सम्बन्ध है।"

सुशीलाको रामूका जाना बहुत ही बुरा लगा। वह अच्छी तरह जानती थी कि ऐसा स्वामिभक्त नौकर उसे अब न मिलेगा और उसका बचा खुचा सहारा भी चला गया। परन्तु इस समय कुछ

बोलना उसने उचित न समझा। वह इसी सोचमें पड़ी थी, कि वल्लभदासने फिर कहा—"क्यों, उत्तर क्यों नहीं देतीं।"

सुशीला क्या उत्तर दे! बोली—"मेरे पास कोई भी उत्तर नहीं है। ये सारी बातें आपको पत्र भेजनेवाला ही बता सकता है।"

परन्तु आज वल्लभदासके माथे मानो भूत सवार हो गया था। वे सुशीला को न जाने क्या कर डालते कि इसी समय एकाएक शारदा वहाँ आ पहुँची। शारदाको देखकर वल्लभदासकी जबान क्षणभरके लिये बन्द तो हुई पर इसके बाद, उन्होंने कुछ भी आगा-पीछा विचार न किया और शारदाके हाथमें वह चित्र और पत्र देते हुए बोले—"तू ही बता, शारदा! आखिर इस पत्रका क्या मतलब है।'

शारदाने पत्र पढ़ा, चित्र खूब गौर से देखा। देखकर बोली—"है तो बड़ा खूबसूरत।" इतना कह, एक व्यंग की हँसी हँसते हुए उसने सुशीलाकी ओर देखा।

सुशीला तिलमिला उठी। अपने पतिका यह व्यवहार, शारदाको वह पत्र दिखाना—यह सब उसे अत्यन्त घृणास्पद मालूम हो रहा था। अब शारदाका यह मुस्कुराकर उसकी ओर देखना आगमें घीका काम कर गया। वह एकदम उत्तेजित हो पड़ी। बोली—"कटे पर नमक छिड़कने की जरूरत नहीं है। खूबसूरत जिसके लिये होगा, होगा ..." इतना कहते कहते वह फूटफूटकर रो पड़ी। आगे शब्द ही उसके मुँहसे न निकले। मुँहकी बात ही मुँहमे रह गयी। वह तो इस समय अपने पति के व्यवहारोंसे स्वय ही

व्याकुल हो रही थी। शारदाका यह व्यंग उसे प्राणघातक सा मालूम हुआ।

शारदा बोली—"मुझपर क्यों नाराज़ होती हो। मैं तो यही कहती हूँ, कि यह शत्रुओंकी चाल है। वे तुम दोनोंमें वैमनस्य कराना चाहते हैं। वल्लभ बाबू! यह भी कोई बात है। आप भी किस फेरमें पड़े हैं। और बहिन! तुम भी सावधान रहो। इधर-उधरके आदमियोंको न आने दिया करो।"

सुशीला बिगड़कर बोली—"कौन आता है, यहाँ?"

शारदाने कहा—"मैं नहीं जानती, पर फिर इस भयंकर सन्देह-का कारण क्या है?"

सुशीलाने कहा—"इसका उत्तर या तो पत्र लिखनेवाला देगा या तुम्हारे बहनोई देंगे।"

शारदा बोली—"पर बिना बीजके अंकुर तो फूटता नहीं। आखिर, इसमें कोई रहस्य अवश्य छिपा है।"

सुशीला समझ गयी, कि यह महालक्ष्मीवाली बातका बदला ले रही है। मौका भी बड़ा सुन्दर मिल गया है। बोली—"यह बीज और अंकुर तो षड़यन्त्र करनेवाले ही जानें।"

वल्लभदास बीचमें ही बोल उठे—"मैं इतनी बातें नहीं सुनना चाहता। मैं यह जानना चाहता हूँ, कि यह आदमी कौन है और..."

शारदा बोल उठी—"इतना तो मैं भी बता सकती हूँ। यह यहीं का रहनेवाला एक दुराचारी पुरुष है। इसका नाम हीरालाल है। यह मेरे सेठके यहाँ भी पहले जाता था, पर सेठको इसकी

चाल-चलन पसन्द न थी, इसलिये उन्होंने इसका आना जाना बन्द कर दिया।"

वल्लभदास बोल उठे—"तब आपका आवागमन अब इधर शुरू हो गया।"

शारदाने दाँतों तले जीभ दबाकर कहा—"भला यह मैं कैसे कह सकती हूँ, पर यह अवश्य कह सकती हूँ, कि यह चित्र उसीका है।"

वल्लभदासने पूछा—"उसका पता जानती हो?"

शारदाने कहा—"मुझे क्या मालूम।"

वल्लभदासने फिर तेजी से कहा—"शायद तुम्हारे सेठ जानते हों।"

तुरन्त ही शारदा बोली—"वे नहीं जानते। उनके सामने इसका नाम भी न लेना। वे तो इसके नामसे चिढ़ते हैं। कहते हैं-विष-भरा सोनेका घड़ा है।"

इतना कह सुशीला की ओर देखकर बोली—"आयी थी, बहन! कि दस मिनिट बैठकर हँस-बोल लूँगी, परन्तु तुम लोगोंने तो यहाँ झूठा ही झमेला फैला रखा है। फिर कभी आऊँगी।"

इतना कह शारदा उठ खड़ी हुई। जाते समय वल्लभदासकी ओर देखकर बोली—'आप इन प्रपंचोंमें न पड़ें। ये शत्रुओंकी चालें हैं। सुशीला बहनकी ओर कौन आँख उठा सकता है। ये साक्षात् सती का अवतार हैं। अच्छा, जाती हूँ।"

इतना कह एक व्यंगकी हँसी हँसती हुई तेजीसे चली गयी।

वल्लभदासने अब शोककी मुद्रा बनाते हुए कहा—"दुःखकी बात है, सुशीला !"

सुशीला बैठी बैठी आँसू बहा रही थी और अपना कर्तव्य सोचती जाती थी। रह रहकर अपने दोनों बच्चोंकी ओर इस दृष्टि से देखती थी, मानो ये ही उसके किसी कार्यके बाधक हो रहे हैं और फिर संकोचसे माथा झुका लेती थी। वह सोचती—उसका नारी-जीवन ही वृथा हो गया, यह मातृत्व किस कामका। जब स्वामी भी अपनी स्त्रीपर सन्देह करे तो जीवन धारण कर ही क्या होगा—पर ये दोनों बच्चे ! इस समय सुशीला, उनकी ओर देखकर चचल हो उठती थी।

वल्लभदास चुपचाप उस कमरे में टहल रहे थे और मन ही मन कुछ सोचते जाते थे। एकाएक सुशीला बोल उठी—"आप जरा सावधान हो जाते, तो मैं कुछ निवेदन करती।"

वल्लभदास आकर कुर्सी पर बैठ गये। बोले—"कहो, क्या कहती हो ?"

सुशीला बोली—"भगवान जाने सत्य है या असत्य, पर आप पर भी कलंक लग रहा है और आज मुझपर भी लग गया। अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिये मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। अब क्या आज्ञा है। क्या आप मुझे वास्तवमें पापिनी समझते हैं ?"

वल्लभदासने कहा—"पत्र तुम्हारे सामने पड़ा है।"

सुशीला कातर स्वरसे बोली—"आज मेरी इज्जत, मान-मर्यादा सब नष्ट हो गयी। शारदाके पेटमें यह बात न पचेगी।

अतएव, अब मेरा जीवन वृथा है ? पर एक बार आप कृपाकर बता दें—क्या आपको भी मेरे चरित्र पर सन्देह है ?"

वल्लभदासने कहा—' मैं कैसे कह सकता हूँ।"

सुशीलाने फिर उसी तरह दृढ़तासे पूछा—'क्या इस पत्र पर आप विश्वास करते हैं ?'

सुशीलाका तेज और दृढ़ता देख वल्लभदास कुछ चिन्तामें जा पड़े। अपने पापको छिपानेके लिये, उन्हें जो कुछ करना चाहता था, उससे बहुत अधिक कर चुके थे। कुछ परिताप-सा भी हो रहा था, क्योंकि नशा और साथ ही खुमार भी उतरा जाता था। बोले-"कैसे विश्वास कर सकता हूँ। आजकल तो पत्रोंकी भरमार हो रही है।"

सुशोला कुछ आश्वस्त हुई। बोली—"पर कभी यह जाँचने की भी चेष्टा की है, कि इस षड़यंत्रको कौन चला रहा है।"

वल्लभदासने देखा—अब वे फँसना चाहते हैं। बोले-"इतनी बातोंसे तुम्हें क्या मतलब है ?'

सुशीलाने नम्र भावसे कहा—"नारी-जीवनका सबसे बड़ा आदर्श है—सत्य! आज मेरे उस सत्य पर भी आक्रमण करनेका साहस लोगोंको हो रहा है। यदि आप ही मेरी रक्षा न करेंगे तो कौन करेगा ?"

वल्लभदास चुप हो रहे। इस समय एकाएक पन्ना उन्हें याद आ गयी थी। वे पन्ना के प्रेम भरे प्रत्येक शब्दसे सुशीलाका धर्म और कर्त्तव्यका भार भरे शब्दोंकी तुलना कर रहे थे। कुछ देर बाद

बोले—"मैं अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता हूँ।"

सुशीला चुप हो रही। वल्लभदास भी चुप रहे। इस मौन अवस्थामें ही कुछ समय बीत गया। इसके बाद सुशीला ही फिर बोली—"कहना उचित नहीं है, पर लाचार होकर कहना पड़ता है, कि आप कुछ सावधान हो जायँ। आपका कोई गुप्त शत्रु उत्पन्न हो गया है और शारदाकी चाल भी अच्छी नहीं मालूम होती।" इतना कह उसने महालक्ष्मी वाली घटना धीरे धीरे कह सुनायी। सुनकर वल्लभदास बोले—"यह तो किसी कहानी जैसी घटना हो रही है।"

सुशीलाको कुछ साहस हुआ, बोली—"आजतक मैंने आपकी सेवा और आज्ञा-पालनमें कोई त्रुटि नहीं की। आपको कुछ कहने और समझानेका अपना अधिकार ही नहीं समझती, परन्तु आज कहना पड़ता है कि शारदा ही उस दिन इस चित्रका परिचय और पन्ना तथा आपका सम्बन्ध मुझे बता गयी थी। आज वही ठीक अवसर पर आकर इस चित्रवालेका परिचय आपको बता गयी है। कल सम्भव है वह चित्रवाला मनुष्य ही स्वयं इस राह पर घूमता दिखाई दे। एक शुभचिन्तक रामू था वह भी चला गया। ऐसी अवस्थामें मेरा क्या कर्त्तव्य है? कृपया बताइये।"

वल्लभदासने कुछ सोचकर कहा—"कहो तो तुम्हें तुम्हारे मायके पहुँचा दूँ।"

सुशीला काँप उठी। बोली—"न, इस समय, मेरी चाहे जो दुर्दशा हो, पर आपको छोड़कर कहीं न जाऊँगी।"

वल्लभदासने तिर्छी दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए कहा—"तो यहाँ तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ?"

सुशीला बोली—"आप करेंगे। मैं आपको छोड़कर कहीं न जाऊँगी और अब आप भी रातमें कहीं न जायँ।"

वल्लभदास गरज उठे। बोले—"मानो मैं तुम्हारा गुलाम हूँ। तुम्हारी आज्ञा माननी ही पड़ेगी। उस दिन राधारमणने ठीक ही कहा था, कि स्त्रियों से जितना ही डरो, वे उतना ही सरपर चढ़ती जाती हैं।"

सुशीला चुप हो रही। समझ गयी कि पन्नाका रंग खूब चढ़ गया है और राधारमण भी आहुति देने का कार्य कर रहा है। उसे इच्छा हुई कि राधारमण-सम्बन्धी सारी बातें कह दे, पर साहस न हुआ। न जाने क्या परिणाम हो।

वल्लभदास उसे चुप देखकर बोले—"अपनी सामग्री ठीक किये रहना। आज शामको तुम्हें मायके पहुँचा दूँगा।"

सुशीलाने इस बार गम्भीर स्वरमें कहा—"वहाँ न जाऊँगी। इस विपत्तिके समय इन चरणोंको न छोड़ूँगी। परन्तु आपके किसी कार्यमें बाधा भी न दूँगी। यह लोहेकी आलमारीकी चाभी है। इसे आप अपने ही पास रखें, न जाने कब क्या जरूरत पड़े। पर दयाकर मुझे यहाँ से न निकालें।"

सुशीला इतना कह, एक बच्चेको गोदमें उठाकर एक ओर बैठ गयी। वल्लभदास उसी तरह कुछ सोचते उस कमरेमें टहलते रहे। चाभी जमीनमें ही पड़ी रही।

इसी समय एक लड़का दौड़ता-हाँफता, उनका नाम लेकर पुकारता वहाँ आ पहुँचा। वल्लभदास भी कुछ घवड़ा-से गये। जमादारने बाहरसे ही उनका नाम लेकर पुकारा।

वल्लभदास बाहर जाना ही चाहते थे, कि वह भीतर घुस आया। बोला—"जल्दी चलिये, रानी रो रही हैं और वह कण्ठा गायब हो गया है।"

वल्लभदास कुछ झिझकसे पड़े। बोले—"जा मैं अभी आता हूँ।"

इतना कह, उन्होंने एकबार सुशीलाकी ओर देखा—वह बच्चेको गोदमें लिये ज्योंकी त्यों खड़ी थी, और फिर तेजीसे उस कमरेसे बाहर चले गये।

सुशीलाने मन ही मन कहा—"यह रानी कौन है?"

नवाँ परिच्छेद

नवीन चक्र

यह पन्नाका ही नौकर था, जो इस तरह दौड़ता हाँफता आ पहुँचा था। वल्लभदास उसी समय उसके साथ चले गये। विचारी सुशीला मुँह देखती ही रह गयी।

जिस समय वल्लभदास वहाँ पहुँचे उस समय पन्ना बिलख-बिलख कर रो रही थी। वल्लभदासको देखते ही बोली— 'देखिये, वह कण्ठा गायब हो गया। आपका दिया हुआ, वह प्रेमका उपहार न जाने कौन शत्रु उठा ले गया।"

वल्लभदास बोले—"तुमने तो रातमें इसी दराजमें रखा था।"

पन्ना बिलखती हुई बोली—"रक्खा तो इसीमें था परन्तु किस तरह क्या हुआ, कुछ पता नहीं।"

वल्लभदासने भी, उसका समूचा कमरा ढूँढ डाला, परन्तु उस कण्ठेका कहीं पता न लगा। बोले—"वह तो कहीं दिखाई नहीं देता।"

पन्ना मानों पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बोली—"आपके प्रेमकी यह पहली निशानी थी। इसका चला जाना बहुत अशुभ है। मैं सोचती थी, कि अब जिस समय आप यहाँ न रहेंगे, उसी कण्ठेको

देख देखकर सन्तोष करूँगी, जी बहलाऊँगी। मैं अभी पुलिसमें रिपोर्ट करती हूँ। इस तरह उसे न जाने दूँगी। अवश्य ही इन घरवालोंमें से ही किसीकी कार्रवाई है।"

पर पुलिसका नाम सुनते ही वल्लभदास घबड़ा पड़े। इसमें उनका नाम प्रकट हो जानेकी सम्भावना थी, भेद खुल जानेका भय। जल्दीसे बोल उठे--"नही पन्ना! ऐसा कदापि न करना। पुलिस हम सबको तंग कर डालेगी और बहुत बदनामी होगी।"

पन्ना बोल—"फिर क्या करूँ, और तो कोई दूसरा उपाय नहीं है। मैं आपके प्रेमकी यह निशानी यों न जाने दूँगी। चाहे जो हो जाये।"

वल्लभदास बोले-"इसमें सन्देह नहीं, कि है यह किसी जानकारका ही काम, पर अब कोई उपाय नहीं है। घबड़ाओ मत, मैं तुम्हे दूसरा दिला दूँगा।"

पन्ना बोली—"वाह! लाख रुपये क्या यों ही आते हैं, आपको मैं तकलीफ देना नहीं चाहती, पर जी बहलाने की एक सामग्री—आपके प्रेमका एक निदर्शन··· ····"

पन्नाका रोना पचम स्वर पर जा पहुँचा। उसने वह हावभाव दिखाया कि वल्लभदासका दिमाग चक्कर खा गया। घबराकर बोले—"देखो, तुम्हारा रोना मुझसे नहीं देखा जाता। चलो, अभी मेरे साथ चलो मैं दूसरा दिलवा देता हूँ।" पर पन्ना कहाँ राजी होती थी। वह बराबर यही कहती जाती थी कि मैं आपकी सम्पत्ति नहीं चाहती, धनका मुझे लोभ नहीं है। मैं तो आपके प्रेमकी भूखी

हैं, जाने दीजिये, देखा जायगा।" परन्तु रोना कम न होता था। उसकी दशा मानो पगलीसी हो रही थी।

वल्लभदाससे अब न सहा गया। उसे जबर्दस्ती उठाया उठाकर बोले—"चलो, अभी दूसरा ले आता हूं।" इतना कह उन्होंने अपनी जेब टटोली। चेक बुक उनके पास ही थी।

पन्ना रोती भी जाती थी और कनखियोंसे उनकी कार्रवाई देखती जाती थी। उन्हें जेब टटोलते देखकर बोली—"क्या खोज रहे हैं। आप ही तो कहीं मेरी परीक्षा लेनेके लिये उसे नहीं उठा ले गये।"

वल्लभदास बोले—"कण्ठे के फेरमें तू पगली हो गई है। जहाँ खरीदूँगा, वहाँ दाम तो देना होगा। देखता था, चेक बुक पासमें है या नहीं।"

पन्ना ने कहा—"रखिये, चेक बुक। अब मैं न लूँगी। मेरे भाग्यमें ही बदा न था।" इतना कह वह उठकर उस कमरेसे बाहर जाना ही चाहती थी, कि वल्लभदासने रोक लिया। बोले—"चलो, कपड़े पहनो।"

सारांश यह कि उसी समय जबर्दस्ती पन्नाको साथ ले वल्लभदास एक नामी जौहरीकी दुकानमें जा पहुँचे और ठीक वैसा ही एक दूसरा कण्ठा खरीदकर पन्ना को दे, उसे मकान पर पहुँचा, घर लौटना ही चाहते थे, कि पन्नाने रोक लिया। बोली—"अब इस समय कहाँ जायँगे।"

पर वल्लभदास न माने। उसी समय चले आये। ज्यों ही वे उस दरवाजेसे बाहर निकले हैं, कि सामने ही रामू खड़ा दिखाई

दिया। वल्लभदासके पैर जहाँ के तहाँ अड़ गये। रामूने एकवार गौरसे उनकी ओर देखा और फिर वहाँसे चला गया। वल्लभदास सर झुकाए एक गाड़ीमें जा बैठे और अपने घर आये। अब तक सुशीला उसी तरह मन मारे बैठी रो रही थी। दोनों बच्चे इधर उधर घूम रहे थे।

घर आते ही ज्योंही रोती हुई सुशीलापर उनकी दृष्टि पड़ी, त्योंहीं वे मानो चिढ़-से उठे। बोले—"यह दिन-रातका रोना क्या लगा रखा है।"

सुशीलाने आँसू पोंछ डाले। बोली—'अपने कर्मका फल भोग रही हूँ। मै न रोऊँगी तो कौन रोयेगा। मेरी तो यह गृहस्थी खाक-में मिली जाती है। आपसे क्षण भर बात करनेका अवसर नहीं मिलता। यह साढ़े तीन लाखका मकान और लाख रुपयोंका कण्ठा बातकी बातमें एक दिनमें चला गया। आफिसके आदमी आपको खोजते फिरते हैं। भुगतान नहीं होता। कलंक घर भर पर लग रहा है। रोऊँ नहीं तो क्या करूँ।"

एकाएक वल्लभदासको खयाल हो आया। कल दो लाखकी हुण्डीका भुगतान था, जो न हुआ। वे घबराकर आफिसकी ओर जाना ही चाहते थे कि प्रधान मुनीम सामने आ पहुँचा। बोला—"कल हुण्डीका भुगतान न हुआ। बाजारमें आप दीवालिया करार दिये गये।"

वल्लभदासने कहा—"अभी रुपये भेजता हूँ।" तुरन्त ही उन्होंने दराज खोल बैंककी पास बुक निकाली। पर दो दिनोंमें साढ़े

चार लाख रुपयोंके चेक कट चुके थे। अब वहाँ बहुत थोड़ी रकम थी। वल्लभदास घबरा उठे। बोले-"बैंकमें तो इतने रुपये नहीं हैं।"

सुनते ही मुनीब अवाक् हो गया। बोला-"बैंकमें करीब पाँच लाख रुपये हैं। भुगतान तो दो ही लाखका था। यह तो कल आप से भेंट न होनेके कारण न हुआ। न जाने आजकल आप किस उलझनमें पड़े हैं और बैंकके रुपये सब क्या हो गये?"

सुशीला सब सुन रही थी। समझ गयी कि मकानवाली घटना सत्य है। इसी कारणसे बैंकमें रुपये नहीं हैं। इन दो लाख की हुण्डियोंमें एक लाखकी हुण्डी तो राधारमणके कारबारकी ही थी। अतएव, वल्लभदासने कुछ आश्वस्त होकर कहा-"लाख रुपयोंकी हुण्डी तो राधारमणकी है। कहला दीजिये, इसका भुगतान कल होगा।"

वृद्ध मुनीम बोला—"हमें अफसोस है कि राधारमण पर आप इतना विश्वास करते हैं। कल शामतक हुण्डीके भुगतानका समय था। केवल रात और यह आधा दिन बीता है और सबसे अधिक बदनामी आपकी राधारमण सेठकी ओरसे ही फैलायी जा रही है। पावनेदार आफिसमें बैठे हैं और मैं आपको समाचार देने आया हूँ, जो चाहे सो करें। मैं घण्टोंसे बैठा आपकी राह देख रहा हूँ।"

वल्लभदास घबराकर बार बार पास बुकके पन्ने उलटने लगे। देखा-"कुल साठ हजारकी रकम बैंकमें है।"

सर पकड़कर उसी जगह बैठ गये। एकदम कातर हो पड़े।

हुण्डीका तो खयाल ही न था। अब, इसी समय रुपयेका प्रबन्ध कहाँ हो सकता है। मुनीमसे बोले-"दो लाखकी मुद्दती हुण्डी काट दीजिये। अभी रुपये आ जायंगे।"

मुनीमने हताश भावसे कहा-"यदि कल सवेरे मुझे खबर मिलती कि आपने रुपये खर्च कर डाले हैं, तो अवश्य मैं सारा प्रबन्ध कर देता, परन्तु अब लाचारी है। समय पर भुगतान न होने के कारण आज सवेरेसे ही बाजारमें आपकी बदनामी हो रही है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। और आप मेरे मालिक हैं, मैं अपने मुँहसे नहीं निकाल सकता। बाजारमें तो हल्ला मचा हुआ है, कि आपने किसी पन्नाको तीन लाखका मकान दिलवा दिया है।"

वल्लभदासने कुछ गर्म होकर कहा-"हल्ला कौन मचाता है?"

मुनीमने कहा-"कौन कहता है, यह कौन बता सकता है। पर कल राधारमणका ही जमादार कहता था कि थियेटरवालियोंको मकान दिलवानेके लिये तीन तीन लाख रुपये हैं, देनेके लिये नहीं।"

वल्लभदासको काटो तो खून नहीं, सन्न हो गये। कुछ देर बाद बोले—'सब झूठी बात है, मुनीबजी! पर इस समय अब क्या करना चाहिये।"

इतना कह, वे हताश भावसे एक कुर्सी पर बैठ गये। सुशीला दरवाजेकी ओटसे सब सुन रही थी। एकाएक सामने आकर खड़ी हो गयी। इस समय उसकी आँखोंमें आँसू न थे। चेहरा गम्भीर और तेजपूर्ण हो रहा था। कमरेके भीतर जाकर बोली—"मुनीब जी!"

मुनीवजी कुर्सी से उठ खड़े हुए बोले—"आज्ञा।"

सुशीलाने कहा—'स्वामीके चरित्र पर कोई सती कलंक नहीं सुन सकती। उन बातोंको छोड़िये। दुनियाँ न जाने क्या क्या कहती है। राधारमण कितने बड़े दुश्चरित्र हैं, मैं जानती हूँ, पर उन बातोंसे कोई मतलब नहीं। यह बताइये, कि यह दो लाखका भुगतान अभी हो सकता है या नहीं।"

मुनीवने दबी जबानमें कहा-"कैसे हो सकता है, रुपये कहाँ हैं?"

सुशीला बोली—"जब शाम तक ये नहीं पहुँचे तब आपने हुण्डी पर प्रबन्ध क्यों नहीं किया। यह इतना बड़ा कारबार आपके भरोसे छोड ये निश्चिन्त थे। आपने यह असावधानी क्यों की?"

मुनीव घबराता हुआ बोला—"मैं जानता था, कि बैंकमें रुपये हैं।"

सुशीलाने कहा—"आप यह भी जानते थे कि तीन बजे बाद बैंकसे रुपये नहीं मिलते। फिर बाजारसे रुपये क्यों न मँगवाये? ये न थे, तो मुझसे क्यों न पूछा?"

मुनीवसे कोई उत्तर न देते बन पड़ा। आवाज रुक-सी गयी। सुशीला उसी तरह गम्भीर आवाजमें बोली—"अब क्या होगा? जाइये, अभी रुपयोंका प्रबन्ध कीजिये।"

मुनीवने कहा—"बाजारमें रुपये मिलना मुश्किल है। अब कोई उपाय नहीं है।"

सुशीलाने गरजकर कहा—"है और अवश्य है। बैंकमें कितने रुपये हैं?"

इतना कह, उसने वल्लभदासकी ओर एक तीव्र दृष्टिसे देखा। वल्लभदास बोल उठे— 'साठ हजार !"

सुशीला तुरन्त भीतर चली गयी। आलमारी खोज पचास हजारकी गिन्नियाँ और नोट तथा अपने सब जेवर निकाल लायी। बोली—"अभी प्रबन्ध कीजिये।"

सुशीलाकी तेजी और चातुरी देख मुनीब अवाक् हो गया। उसी समय जेवर लेकर चला गया। वल्लभदासको तो अब तक स्वप्नमें भी विश्वास न था, कि सुशीलाके पास पचास हजार नगद निकलेंगे। वे आश्चर्यसे उसका चेहरा देखने लगे। सुशीलाने कहा—"यदि वह कण्ठा रहता तो इतने जेवर न निकालने पड़ते।"

दूसरा समय रहता तो वल्लभदास उसे इस कथन पर खूब आड़े हाथ लेते, परन्तु इस समय वे चुप रह गये।

थोड़ी ही देरमें मुनीब रुपये लेकर आ पहुँचा। अब सब मिला-कर दो लाखसे अधिककी ही रकम थी। मुनीब सब रुपये सहेज कर जाना ही चाहता था, कि इसी समय पावनेदारोंका दल हल्ला मचाता हुआ दरवाजे पर ही आ पहुँचा। इनमें सबके आगे वही राधारमणका कर्मचारी था। वह नाना प्रकारकी अनुचित बातें मुँहसे निकाल रहा था।

मुनीबने सबके रुपये चुका दिये। हुण्डी भरपाई कर ले ली। परन्तु राधारमणके कर्मचारीका मुँह बन्द न हुआ। वह मानो इस बात पर तुला हुआ था कि वल्लभदासकी खूब बदनामी की जाय। वह पन्ना और वल्लभदासके सम्बन्धकी बातें जोर जोरसे और

बड़े ही बेढंगे तरीकेसे कहता और सबको सुनाता था।

इस कर्मचारी—और खासकर अपने मित्रके इस कर्मचारीका ऐसा अभद्र व्यवहार देखकर भीतर ही भीतर वल्लभदासका खून खौल रहा था। वे बड़ी कठिनतासे अपनेको जब्त किये हुए बैठे थे। पर रुपये मिल जाने पर भी जब उसका मुँह बन्द न हुआ, तब वे अपने आपेसे बाहर हो उठे। वे गरज कर बाहर निकल पड़े। लोगोंने बहुत रोकना चाहा पर किसी तरह न रुके।

सुशीला अच्छी तरह जानती थी कि इसका क्या परिणाम होगा। अतएव, वह झपटकर सामने आ पहुँची, परन्तु वल्लभदास का वेग सम्हाल न सकी। वल्लभदासका इस जोरका धक्का उसे लगा कि वह टकराकर दूर जा पड़ी, माथा फट गया और बेहोश होकर गिर पड़ी।

जमादारोंने जबर्दस्ती उस कर्मचारीको पकड़कर बाहर निकाल दिया। वह मन ही मन कुछ बड़बड़ाता वहाँसे चला गया। दासियाँ सुशीलाको उठानेके लिये दौड़ पड़ीं और वल्लभदास काठके पुतले की तरह किंकर्तव्य विमूढ़ भावसे एक ओर खड़े हो गये।

दसवाँ परिच्छेद।

नवीन अभिसन्धि।

को लावामें समुद्र-तटसे कुछ हटकर एक बहुत विशाल महल बना हुआ है। यह महल इतना सुन्दर बना है कि दर्शकोंकी दृष्टि बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। चारों ओर वैभवका दृश्य और सजावट दिखाई देती है। इस समय बिजलीकी रोशनीमें यह महल अपने वैभवका परिचय और भी उत्तमतासे दे रहा है। यही सेठ आनन्द मोहनका मकान है।

इसी मकानके एक सुन्दर सजे-सजाये कमरेमें एक बहुमूल्य कुर्सी पर सेठ आनन्द मोहन बैठे हुए हैं। उनके पास ही एक दूसरी कुर्सी पर शारदा बैठी है। सेठ आनन्द मोहनकी अवस्था इस समय पचास वर्षों से ऊपरकी ही होगी, परन्तु शरीर भूल गया है। इन्हें देखनेसे ही मालूम होता है कि इन्होंने अत्यन्त विलासमय जीवन बिताया है। शरीर पर बहुमूल्य पोशाक है। सारा कमरा सुगन्धिसे भरा हुआ है। एकाएक आनन्द मोहन बोल उठे—"शारदा! मैं तुम्हें जितना ही प्यार करता हूँ, तुम उतनी ही मानो दूर हटती चली जाती हो। यह क्या बात है?"

शारदाने मुसकुराकर कहा—"ये आपके मनोभाव हैं, वास्तवमें

बात ऐसी नहीं है, परन्तु आप मुझे जिस तरह पींजड़ेमें बन्द रखना चाहते हैं, वह कभी कभी असह्य हो जाता है।"

आनन्द मोहनने मुसकुराकर कहा—"तुम जैसी सुन्दरी पर क्या सबकी दृष्टि पड़नी उचित है? मैं तो वह प्रेम चाहता हूँ, कि ना मैं देखूँ और को ना तोहिं देखन देउँ?"

शारदाने कहा—'यह तो मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है, परन्तु आपका यह प्रेम कभी कभी इस अवस्था पर जा पहुँचता है कि उससे आपका मुझपर अविश्वास प्रकट होता है।"

वृद्ध बोला—"अविश्वासकी कोई बात नहीं है शारदा! पर यह सत्य है कि मैं तुम्हें अपनी आँखोंकी ओट नहीं होने देना चाहता। उस दिन भी तुम बिना मुझसे पूछे ही न जाने कहाँ चली गयीं और घण्टों बाद लौटी।"

शारदाने कहा—"महालक्ष्मी गयी थी। देवताका दर्शन करना भी क्या अब बन्द कर दूँ?"

आनन्द मोहनने कहा—"सुना है, स्त्रीके लिये पति ही देवता और पति ही सर्वस्व है, क्या तुम यह भूल गयीं?"

शारदा एक व्यंगकी हँसी हँस पड़ी। बोली—"बात तो ऐसी ही है, परन्तु देव-दर्शन भी आवश्यक है।"

सेठने जरा तीखी आवाज़में कहा—"इसी देवदर्शनके बहाने इधर उधर घूमना भी हो जाता है। मैंने तुम्हारे लिये सारी सुख सामग्रियाँ एकत्र कर दी हैं, तुम्हें किसी चीज़की कमी नहीं है, परन्तु न

जाने क्यों तुम सन्तुष्ट-सी नहीं मालूम होती। अब इसका क्या प्रबन्ध करूँ? क्या मैंने तुमसे विवाह कर भूल की?"

शारदा कुछ देरतक टकटकी लगाकर उनकी ओर देखती रही फिर बोली—"यह कौन कहता है? आप तो वृथाकी बात आज निकाल बैठे हैं। मैं भी अपना कर्त्तव्य कुछ समझती हूँ, अपना धर्म जानती हूँ। अब मैं छोटी बालिका नहीं हूँ जो आपको इतना समझानेकी जरूरत है।"

आनन्द मोहन बोले—"तुम्हारे मुँहसे एक मीठी बात सुननेके लिये तरसा करता हूँ, कभी प्रेमका एक शब्द भी तुम्हारे मुँहसे नहीं निकलता। आखिर इसका कारण क्या है?"

शारदा बोली—"मुझे भी आपने क्या कोई वेश्या समझ लिया है, जे बात बातमें प्रेमके शब्द, हाव-भाव कटाक्षके दृश्य आपको दिखाया करूँ? प्रेम भी क्या कोई दिखानेकी चीज है। आपलोग तो उसीके आदी होगये हैं।"

आनन्द मोहनने बड़ी शान्तिसे कहा—"नहीं दिखानेकी चीज नहीं है, पर यह चेहरा एक आइना है, हृदयकी बातका असर इस पर आ ही जाता है और कभी कभी मुँहसे उसी ढँगकी बात निकल ही पड़ती है।"

शारदा बोली—"ठीक है, आप जैसा समझें।" इतना कह, वह अपनी कुर्सीसे उठकर कमरेमें इधर उधर टहलने लगी। वृद्ध आनन्द मोहन टकटकी लगाकर उसकी ओर देखते और मन ही मन कुछ सोचते रहे। इसी समय उस कमरेमें लगी घण्टी जोरसे बज उठी।

शारदा सावधान हो गयी। बगलमें ही रखा चोंगा उठाकर आनन्द मोहनने पूछा—"क्या है ?"

आवाज आयी—"बाबू राधारमण आये हैं।"

वृद्धने शारदाकी ओर देखकर कहा—"राधारमण आये हैं।"

शारदा कुछ अप्रसन्न-सी हो रही थी। बोली-"तो मैं क्या करूँ ? इच्छा हो यहीं बुला लीजिये, अथवा दूसरे कमरेमें चले जाइये।"

वास्तवमें इस समय राधारमणका आना आनन्द मोहनको अच्छा न लगा। परन्तु बहुत दिनोंकी जान पहचान थी। दोनों ही बड़े कारवारी थे। अतएव, इन दोनोंमें गहरी घनिष्टता थी। उन्होंने उसी तरह चोंगा मुँहको लगाकर कहा—"उन्हें ऊपर इसी कमरेमें पहुँचा जाओ।" इसके बाद शारदाकी ओर देखकर बोले-"अब तो यह नहीं कहोगी कि मैं तुमपर अविश्वास करता हूँ। आओ, अब इनकी खातिर करो।"

राधारमण अकेला ही नहीं था, इस समय उसके साथ हीरा-लाल भी था। सेठने बड़े तपाकसे उनका स्वागत करते हुए कहा-"आज बहुत दिन बाद आये। और यह दूसरे सज्जन कौन हैं ?"

राधारमणने कहा—इधर व्यवसायकी झंझट कुछ बढ़ गयी है। इसीलिये न आ सका। ये मेरे अभिन्न हृदय मित्र हैं। इनका नाम हीरालाल है। कपड़ेके व्यवसायी हैं।"

वृद्धने आगे बढ़कर राधारमणसे हाथ मिलाया और बोले—"यद्यपि मैं एक प्रकारसे एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ फिर भी आप कभी कभी आया करें।"

राधारमणने कहा—'कुछ बाजार की खबर भी सुनी।"

आनन्दमोहनने कहा—"कुछ भी नहीं। और मैं बाजार पर इतना खयाल भी नहीं रखता।"

राधारमणने हीरालालकी ओर देखकर कुछ इशारा किया। फिर आनन्दमोहन की ओर देखकर बोला—"इस समय बाजारमें गहरी हलचल मची हुई है।"

इसी बीच हीरालाल उठ खड़ा हुआ। बोला—"बहुत दिनोंसे आपका दर्शन करनेकी इच्छा थी। पर आज एक विशेष कार्य है, इसलिये बैठ नहीं सकता। फिर कभी आऊँगा।" इतना कह अभिवादन कर हीरालाल चला गया। अब सेठकी ओर देखकर राधारमण बोला—"आज भाभी साहबा कहाँ हैं?"

वृद्ध आनन्दमोहनने कहा—'भीतर होंगी, अभी तो यहीं थीं।"

राधारमणने कहा—"उनके ही सामने कहता तो अच्छा था, क्योंकि आजकी घटनासे एक ऐसे मनुष्यका सम्बन्ध है जो मेरी भाभी साहबा को बहुत प्रिय है।"

वृद्ध कुछ चकरा उठा। बोला—"वह कौन?"

राधारमणने व्यंग भरे स्वरमें कहा—"सुशीलाके पति वल्लभदास। आपको तो मालूम ही होगा कि सुशीला और भाभी साहबामें कितना घनिष्ट सम्बन्ध है।"

वृद्ध आनन्दमोहनने कहा—"लाखोंमें एक आदमी है। ऐसा सुशील और सच्चरित्र मनुष्य तो मैंने देखा ही नहीं।"

इसी समय शारदा उस कमरेमें आती दिखाई दी। इतने ही

समयमें उसने अपने वस्त्र बदल डाले थे। एक बढ़िया बनारसी साड़ी उसके शरीर पर शोभा दे रही थी। सर खुला था और नागिनसी चोटी पीछे लटक रही थी। एक गंगा-जमनी कामकी तश्तरीमें पान लिये बड़े नाजसे उस कमरेमे आ पहुँची और आनन्दमोहनके बगल-में कुर्सीके सहारे खड़ी हो तश्तरी उसने सामने टेबिलपर रख दी तथा आनन्दमोहनकी कुर्सीको पकड़, कुछ पीछे हटकर इस तरह खड़ी हो गयी कि उसका चेहरा आनन्दमोहन को न दिखाई पड़ता था।

वृद्ध आनन्दमोहन तो शारदाके इस समयकी रूप छटा पर न्योछावर हो गये। उन्होंने हाथ पकड़कर सामनेकी ओर खींचते हुए कहा—"इस कुर्सीपर बैठो।"

शारदा कुछ लजाती सकुचाती सी सामने आकर बैठ गयी। बोली—"कहिये, क्या आज्ञा है?"

आनन्दमोहनके कुछ उत्तर देनेके पहले ही राधारमण बोल उठा—"आज एक नयी घटना सुनाने आपके पास आया हूँ। आप सुनकर चकित रह जायँगी।"

आनन्दमोहनने कहा—'वल्लभदास हीरा है, वैसे मनुष्य कम दिखाई देते हैं और उसकी स्त्री भी वैसी ही नम्रताकी खान है।"

राधारमणने कहा—"परन्तु आप यह भी जान रखें, कि कभी कभी सोनेके घड़ेमें भी विष रहता है और गुलाबमें काटा तो होता ही है।"

आनन्दमोहन अवाक् होकर राधारमणका चेहरा देखने लगे।

शारदाने आश्चर्यसे कहा—"उन्हें क्या हुआ है ? अभी उस दिन मैं गयी थी, कोई भी नयी घटना तो नहीं घटी।"

राधारमण तिरछी दृष्टिसे उसकी ओर देखता मुसकुराता हुआ बोला—"तुम्हें क्या सहजमें मालूम होगा। लो, अपनी बहिनके पतिका दास्तान सुन लो। आज उनका दीवाला हो गया।"

"दीवाला हो गया!" एक साथ ही आनन्दमोहन और शारदाके मुँहसे यह बात निकल पड़ी। आनन्दमोहनने तो दुःखसे माथा झुका लिया पर शारदा और राधारमणकी आँखोंने ही आपसमें मिलकर कुछ बातें कर लीं।

राधारमणने कुछ जोर देकर कहा—"आप आश्चर्य न करें। दीवाला हो गया और वह भी कुल दो लाख रुपयोंके लिये।"

आनन्दमोहनने आश्चर्यसे और जोरकी आवाजमें कहा—"असम्भव! राधारमण बाबू! असम्भव! वह जब चाहता दस पाँच लाख यहाँसे मंगवा ले सकता था और उसके पास ही क्या दस पाँच लाखकी कमी है, जो दो लाखके लिये दीवाला होगा। और आप भी तो उनके मित्रोंमेंसे हैं, आपने कुछ मदद नहीं की।"

राधारमणने कहा—"अवश्य मैं उनके मित्रोंमें था। पर ऐसे दुराचारीका साथ और मित्रता मैं पसन्द नहीं करता।"

आनन्दमोहनने और भी चकित होकर कहा—"राधारमण बाबू! आप क्या कह रहे हैं? वल्लभदास और दुराचारी!"

राधारमणने कहा—"दुराचारी और घोर दुराचारी। नहीं तो क्या दो लाख रुपयोंके लिये उनका कारबार बन्द हो जाता।"

शारदाने भी शोककी मुद्रा बना ली। आनन्दमोहन बोले—"असम्भव ! इसमें अवश्य ही कोई रहस्य छिपा है।"

राधारमणने कहा—"मैं जानता हूँ, कि आपकी उनपर विशेष श्रद्धा है। इसीलिये, आपको सावधान करने आया हूँ। असल बात तो यह है, और यहाँकी प्रसिद्ध ऐक्ट्रेस पन्नाका नाम आपने सुना होगा। आजकल वल्लभदास उसीके प्राणवल्लभ हो रहे हैं। साढ़े तीन लाखका मकान और दो दो जड़ाऊ कण्ठे उसे दिये गये हैं, इसीमें तो बैंककी पाँच लाखकी रकम स्वाहा हो गयी। फिर कारबार देखनेका समय किसे है। दिनभर तो आप उसीके यहाँ बैठे रहते हैं, नहीं तो दो लाख रुपये क्या चीज थी।"

आनन्दमोहनने कहा—"विश्वास नहीं होता। अच्छा ये हुण्डियाँ किसकी थीं जिनका भुगतान न हो सका।"

राधारमणने कहा—"एक लाखकी तो मेरी ही थी।"

आनन्दमोहनने कहा—"फिर आपने उनकी रक्षा नहीं की ? आपको तो यह बात ही दबा रखनी थी।"

राधारमणने कहा—"ऐसे दुराचारियोंकी सहायता करना मैं पाप समझता हूँ, और आपको भी सावधान कर देता हूँ, कि उसके फेरमें अब न पड़ जायँ और किसी तरहकी मदद न करें। क्योंकि भाभी साहबकी उस घर पर विशेष दया है।"

इतना कह राधारमणने वल्लभदासकी शिकायत कुछ इस ढंगसे करनी आरम्भकी कि वृद्ध आनन्दमोहनको उसकी बातों पर पूरा पूरा विश्वास हो गया। उन्होंने उसी समय शारदाकी ओर

देखकर कहा—"यों तो मैं सदैवसे तुम्हे किसीके यहाँ जाने देनेका विरोधी हूँ, पर आजसे कभी उस मकानमें न जाना। आजसे उस दुराचारीके यहाँ पैर भी न रखना।"

शारदा दृढ़ स्वरमें बोली—"मुझे इन बातोंकी क्या खबर थी। आजसे कभी वहाँ पैर न रखूँगी।"

आनन्दमोहनने कहा—"हाँ, ऐसा ही होना चाहिये। सोहबतका असर हुए बिना नहीं रहता और सती स्त्रियों पर तो पापियोंकी छाया तक न पड़नी चाहिये।"

परन्तु अभी अभी उनके मुँहसे यह बात समाप्त ही हुई थी, कि किसी स्थानसे एक रोड़ा आकर आनन्दमोहनकी गोदमें गिरा। वृद्ध चौंककर कुर्सीसे उछल पड़े। इसके बाद उन्होंने देखा कि उसमें एक पत्र बँधा हुआ है जिसपर उनका ही नाम लिखा है।

वृद्धने पत्र उठाकर खोल डाला। उसमें जो लिखा था, पढ़कर उनका सर चक्कर खा उठा। लिखा था—"वल्लभदासका सत्यानाश करनेमें बहुत कुछ हाथ राधारमणका ही है। आप अपनी सम्पत्ति तथा परिवारसे सावधान रहेंगे। समय मिलने पर कभी रहस्य आप ही खुल जायगा। इसकी संगतिमें स्त्री तथा धन दोनोंकी ही रक्षा नहीं हो सकती।"—आपका १, २, ३,

आनन्दमोहन चकरा उठे। चाहते थे, कि पत्र किसीको न दिखाएँ। अभी उसे जेबमें रखनेके लिये उन्होंने हाथ बढ़ाया ही था कि शारदाने पत्र छीन लिया, पढ़ डाला और इसके बाद अपने पतिको देना ही चाहती थी कि बीचमें ही राधारमणने ले

लिया। वृद्ध आनन्दमोहन मुँह देखते ही खड़े रह गये।

पत्र देखते ही राधारमणने गरजकर कहा—"यह कौन है जिसे मेरी निन्दा करनेका साहस हुआ ?"

सभी दौड़कर बाहर निकल पड़े। यह कमरा जिसमें बैठकर ये सब इस समय बातें कर रहे थे, एक तल्ले पर ही था, इसके नीचे ही खूबसूरत बाग लगा हुआ था। बागके बाहर सड़क थी। तुरन्त ही आनन्दमोहनने चिल्लाकर कहा—"बागमें कोई बाहरी आदमी आया है, जल्दी पकड़ो।" परन्तु समूचा बाग ढूँढ़ डाला गया किसीका पता न लगा। सभी हताश हो वापस लौट आये।

राधारमणने कहा—"आपके यहाँ पहरेका प्रबन्ध अच्छा नहीं है। अवश्य ही किसीने बागसे ही यह रोड़ा फेंका है।"

इस समय रातके नौ बजे थे। वृद्धने चिन्तित होकर कहा—"यह तो एक विचित्र घटना हो गयी। आजतक तो ऐसा कभी न हुआ था।"

शारदा बोली—"होगा कुछ, इसमें चिन्ताकी कौनसी बात है।"

राधारमण बोला—"आप तो निर्द्वन्द्व रहे। इसका पता मैं लगाऊँगा।" इतना कह सेठसे विदा हो, जोड़ी गाड़ी पर सवार हो वहाँसे चला गया।

अब आनन्दमोहनने शारदाकी ओर देखकर कहा—"इनकी लीला ये ही जानें-पर वल्लभदासका पतन दुःखकी बात है।"

पर शारदा कोई उत्तर न दे सकी। उसका ध्यान कुछ दूसरी ही ओर था।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

विपत्ति-घटा

भी संध्या होनेमें कुछ देर थी, वल्लभदास मलिन मुखसे अपने कमरेमें बैठे थे, उनका मुनीब उन्हें कुछ कागज पत्र समझा रहा था, कि एकाएक कई पुलिसके सिपाहीके साथ एक दारोगा वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने वल्लभदासको पुकारा। वल्लभदास तुरन्त बाहर निकल आये। उन्हे क्या खबर कि क्या घटना घटी है। राधारमणका वह जमादार भी उनके साथ ही था। उसने वल्लभदासको पहचान कर कहा—"इन्होंने ही मुझे मारा था।"

इस समय उस जमादारके माथेमें भी पट्टी बँधी हुई थी। मुनीब तथा अन्यान्य मनुष्योंने बहुत कुछ कहा कि यह झूठी कार्रवाई है। परन्तु दारोगाको किसी तरह भी विश्वास न हुआ। वल्लभदासको उसी समय पुलिस पकड़ ले गयी और उनपर मारपीटका अपराध लगाकर चलान कर दिया गया।

सुशीला इस समय खाटपर पड़ी हुई थी। उसके माथेमें जो गहरी चोट आयी थी, उसने उसे बहुत कमजोर कर दिया था।

यह समाचार मालूम होते ही वह तड़प उठी। यह विपत्तिका पहाड़ एकाएक कहाँसे टूट पड़ा। इस समय एकाएक उसे रामू याद आ गया। परन्तु रामू कहाँ! इस विपत्तिमें वह किसका सहारा ले। सुशीला अथाह सागरमें जा पड़ी। वह अच्छी तरह जानती थी, कि यह सब कारंवाइयाँ राधारमणकी ओरसे हो रही हैं। परन्तु उसका कोई वश न था। इतने पर भी उसने साहस बाँध कर मुनीबको बुलाया। बोली—"अब क्या किया जाय।"

मुनीब स्वयं घबड़ा उठा था। बोला—"जो आज्ञा दीजिये।"

सुशीला सोचमें पड़ गयी। बोली-"उन्हें छुड़ानेका अभी प्रबन्ध होना चाहिये। पीछे देखा जायगा।"

मुनीब बोला—"जमानत चाहिये। सम्भव है, वे जमानत पर छूट जायँ। परन्तु इसके लिये किसी अच्छे और धनी मनुष्यको जरूरत पड़ेगी।"

सुशीला विचारने लगी। इस कुअवसर पर किससे प्रार्थना की जाय। क्या राधारमणसे—परन्तु उसकी ओरसे तो ये उत्पात ही खड़े किये जा रहे हैं। इस समय उसे अपने रूपपर बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। मन ही मन बोली-"यह रूप ही उपद्रव मचा रहा है।" परन्तु इस समय इन बातों पर विचार करनेका अवसर न था। दूसरा मनुष्य जो उसकी ध्यानमें आया—वे वृद्ध आनन्द-मोहन थे, परन्तु आनन्दमोहनकी बात याद आते ही उसे शारदा याद आ गयी और याद आया, उसका उस दिनका व्यवहार! सुशीला हताश हो पड़ी। आनन्दमोहनको शारदा न आने देगी।

सुशीला घोर चिन्तामें जा पड़ी। राधारमणके सिवा और किसीसे वल्लभदाससे घनिष्टता है—यह वह जानती न थी। वल्लभदास इस प्रकृतिके मनुष्य थे, कि वे विशेष कहीं जाते आते न थे। इसके सिवा हुण्डीका समय पर भुगतान न होना, पन्नासे सम्बन्धकी बातका प्रचार हो जाना—ऐसी अपमानजनक घटनायें थीं कि किसीके पास मुनीबको भेजनेका साहस ही न होता था। अन्तमें उसने मुनीबको बहुत समझा बुझाकर थानेमें जानेके लिये राजी किया। बोली—आप जाकर चेष्टा करें, किसी तरह उन्हें छुड़ा· कर लायें।"

परन्तु इसी बीच एक और भी विलक्षण घटना घट गयी। मुनीब न जा सका। यह सभी जानते हैं कि विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। वल्लभदासके दीवालिया होनेका समाचार बम्बईमें फैल गया था। अब उनके पकड़ जानेकी बात फैलते भी देर न लगी। बातकी बातमें यह समाचार भी चारों ओर फैल गया। अतएव, जो कुछ और भी हुण्डी पुजके पावनेदार थे—वे सभी वल्लभदासके यहाँ रुपये लेने आ पहुँचे। मुनीबने यद्यपि बाहर आकर उन्हे बहुत कुछ समझाना चाहा, परन्तु वे किसी तरह भी माननेके लिये तैयार न थे।

इस नयी विपत्तिने सुशीलाको और भी घबड़ा दिया। अब वह किधर किधर देखे। अन्तमें उसने मुनीबको बुलाकर कहा—"ये इस तरह न मानेंगे, जो भाग्यमें बदा होगा, सामने आवेगा, परन्तु मुझसे यह दुर्दशा नहीं देखी जाती।"

मुनीबने कहा—"परन्तु उपाय क्या है ?"

सुशीला उसी अवस्थामें उठी। बोली—"पहले इन्हें हटाना होगा।" उसने अपने समस्त बहुमूल्य जेवर जो बाकी बचे थे निकाल कर दे दिये। बोली—"पहले जाकर रुपये लाइये। इन्हें मेरे घरसे हटाइये।"

मुनीब उन्हें सान्त्वना देकर चला गया। थोड़ी ही देर बाद लौटकर उसने उनके रुपये चुकाये, परन्तु फिर भी एक बहुत बड़ी रक़म बाकी रह गयी। यह एक बहुत धनी पुरुषकी हुएडी थी। उसके आदमीको समझा बुझाकर बिदा किया। सुशीलाने स्वयं उसे बहुत समझाया। बोली—"उनके छूटकर आते ही इन रुपयोंका भी प्रबन्ध हो जायगा।"

विचारा भला आदमी था। विपत्तिको समझ गया। अब सुशीला फिर वल्लभदासको छुड़ानेकी चेष्टामें लगी। इस झमेलेमें ही बहुत देर हो चुकी थी। अब चेष्टा न करनेसे उन्हें रातभर हाजतमें रहना पड़ेगा। सुशीला कातर हो पड़ी। उसने बहुत कुछ समझाकर मुनीबको थानेमें भेजा। परन्तु यह क्या—थोड़ी ही देर बाद उसने देखा कि वल्लभदास छूटकर लौट आये।

इस समय उसकी प्रसन्नताका वारापार न रहा। अपनी चोट और अपनी दुरवस्था वह भूल गयी। दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये। बोली—"आप कैसे छूटे ?"

वल्लभदासने कहा—"मालूम नहीं। एक अपरिचित सज्जनने आकर मेरे लिये जमानत दे दी।"

सुशीला सोचने लगी। यह अपरिचित सज्जन कौन है ? वल्लभदाससे पूछा—"आपने उनका नाम नहीं पूछा।"

वल्लभदास दबी जबानमें बोले—"उन्होंने नाम बतानेसे इनकार किया।"

सुशीला और भी चिन्तित हो पड़ी। कुछ देर बाद बोली—"भगवानने किसीको भेज दिया है।"

परन्तु वल्लभदासका ध्यान कुछ दूसरी ही ओर था। उस मनुष्यने अपना नाम पता कुछ भी न बताया था। अतएव रह रहकर उनका ध्यान पन्नाकी ओर ही जाता था। वे समझते थे—हो न हो, इसमें पन्नाका हाथ है। मेरी इस विपत्तिका समाचार सुनकर उसने ही किसीको भेजा है। वह मुझे हृदयसे प्यार करती है। मैंने भी उसे कई लाखकी सम्पत्ति दी है। वह कभी इतनी कृतघ्न नहीं हो सकती कि इस विपत्तिमें मेरी सहायता न करके इस तरह के इस आपद्‌में भी वे पन्नाको भूल न सके।

थोड़ी ही देर बाद मुनीब लौट आया। बाहर से ही बोला—"वे थानेमें तो नहीं है।"

वल्लभदास बाहर निकल आये। मुनीब अवाक् हो गया। यह कौन सहायक आ पहुँचा, जिसने इतना जल्द वल्लभदासको छुड़ा लिया। न जाने क्यों इस समय वल्लभदासको वहाँ देखकर मुनीबको जो प्रसन्नता होनी चाहती थी, वह न हुई। सुशीलाने दूरसे ही इस बातपर लक्ष्य किया। पतिपरायणाको एक दूसरी ही चिन्ता सवार हो गयी। इस एक साधारण-सी घटनाने—अपने मालिक

की मुक्तिपर असाधारण आनन्द प्रकट न होनेकी बातने उसके हृदयमें एक भयङ्कर सन्देह-बीज बो दिया। पर इस समय कुछ बोलनेका अवसर न था। उसने देखा, कि इस समय शत्रुओंकी संख्या कम नहीं है। इसे और भी क्यों अपना शत्रु बनाया जावे, पर वल्लभदासको सावधान कर देना भी उसने एक आवश्यक कर्तव्य समझा।

सरल हृदय वल्लभदासका इन विषयोंपर ध्यान न था। वे इस समय मन ही मन पन्नाको धन्यवाद दे रहे थे और चाहते थे, कि किसी तरह जाकर उसे स्वय धन्यवाद दे आयें।

इसी समय सुशीलाने उन्हें भीतर बुलाया। मुनीवको बैठनेका इशाराकर वल्लभदास भीतर चले गये। सुशीला बोली—"अब आगे क्या होगा? मुनीवने और भी कुछ आपको बताया?"

वल्लभदास कुछ समझ न सके। बोले—"और क्या, अब मुकद्दमा लड़ना होगा?"

सुशीलाने कहा—"उस विषयमें जो होगा, देखा जायगा। उसके विषयमें मैं अभी कुछ नहीं कह सकती, भगवान मालिक हैं, जिसने आज विपत्तिसे अनायास ही आपका उद्धार किया है, वही फिर भी आपकी रक्षा करेगा। परन्तु, आज आपके जाते ही और भी कितने ही पावनेदार आ पहुँचे थे। मैंने आपके घरकी सारी-रकम देकर उनका पावना चुका दिया है, पर फिर भी एक मोटी रकम देनी रह गयी है। क्या आपका बाजारमें पावना नहीं है?"

वल्लभदास सुनकर अवाक् हो गये। बोले—"अब और

किसको तुमने दिया। मुझे तो और किसीका भी देना नहीं है। बड़ी हुण्डी एक है, जिसका समय अभी बहुत बाकी है, बाजारमें भी काफी पावना है। यह तुमने क्या किया?"

सुशीलाने सारी बातें कह सुनायीं। अन्तमें बोली—"आपका यह अपमान मुझसे नहीं देखा जाता था। मुनीबजीने भी इन सबका देना स्वीकार किया। अतएव, मैंने चुका देना ही आवश्यक समझा।"

वल्लभदासने कुछ नाराज होकर मुनीबको पुकारा, परन्तु मुनीबका पता न था। न जाने कहाँ चला गया था। सुशीला समझ गयी, कि धोखा हुआ। मुनीब भरपायी किये पुर्जे तथा हुण्डियाँ भी अपने साथ ही लेता गया। वल्लभदास खिजला उठे। बोले—"मुनीब भी क्या बेईमान हो गया!"

जमादार भेजकर घर पर खोजवाया, परन्तु जिस कमरेमें वह रहता था, खाली पड़ा था। उस मकानके अन्य किरायेदारोंने कहा—"कई दिन हुए वे यह कमरा खालीकर चले गये। कहाँ गये, मालूम नहीं।"

जमादारने वापस आकर यह समाचार वल्लभदासको सुना दिया। सुशीलाने कहा—"अभी अभी मैंने यही अनुभव किया था। मैंने देखा कि आपके छूट आनेपर मुनीब प्रसन्न न हुआ। अतएव उसी समय मुझे सन्देह हो गया और यही कहनेके लिये मैंने आपको भीतर बुलाया था।"

वल्लभदास सर पकड़कर बैठ गये। यह क्या हो गया! सुशीला

मन ही मन बोली—"अब परिताप करनेसे क्या होता है। जब मालिक स्वयं कारबार नहीं देखता तब उस कारबारकी यही अवस्था होती है।" प्रत्यक्षमें उसने कहा—"अब चिन्ता कर क्या होगा। एक बार अपना पावना देखें। शायद वह भी वसूल न कर ले गया हो।"

वल्लभदास भी ठीक यही सोच रहे थे। एकाएक बोल उठे—"तुम्हे यह मालूम है, कि जेवर सब कहाँ बन्धक रख आया है।"

सुशीला बोली—"मुझे क्या मालूम, मैं समझती थी, कि आपने सब लिख लिया होगा। परन्तु अब घरमें तो कुछ भी नहीं है। इस मुकद्दमेका खर्च कैसे चलेगा।"

वल्लभदासने कहा—"इसके लिये तुम्हें चिन्ता न करनी पड़ेगी। तुम क्या समझती हो कि जिसने इतना बड़ा मददगार भेजा था, वह सहायता न करेगा। रुपयोंकी कमी न रहेगी। और बाजारमें पावना भी तो बहुत है।"

इतना कह वल्लभदास उठ खड़े हुए। अभी रातके आठ बजे होंगे, वल्लभदास वस्त्र बदल बाहर जानेके लिये तैयार हुए। सुशीला को काठ मार गया। ये आज भी कहाँ चले। क्या अबतक इनके विचार नहीं बदले? क्या इतने पर भी पन्ना न भूली?

परन्तु उसने कुछ कहना, उचित न समझा। बोली—"जरा जल्द ही आइयेगा। मेरी तबियत ठीक नहीं है, और आप भी दिन भर परेशान रहे हैं।"

वल्लभदासने "हूँ" कर दिया और तेजीसे बाहर निकल गये।

सुशीला चिन्तित भावसे पलंग पर जा पड़ी। अब भी उसके सरके घावमें बहुत दर्द हो रहा था और शरीर शिथिल होता जाता था।

वल्लभदास खुशी खुशी सीधे पन्नाके घर जा पहुँचे। परन्तु यह क्या! भीतर पैर रखते ही जमादारने कहा—"अब इस घरमें आनेकी आपको इजाजत नहीं है। मालकिनका यही हुक्म है।"

वल्लभदासके सरपर सैकड़ों घड़े पानी गिर पड़ा। क्रोधसे तिलमिला उठे। झिड़क कर बोले—"एक बार तुम खबर तो दो।"

जमादार एक विचित्र-सी सूरत बनाता हुआ ऊपर चला गया। वल्लभदासने भी उसके साथ ऊपर जाना चाहा, परन्तु इस बार उसने बिगड़कर कहा—"आप यहीं ठहरें। मैं अभी खबर देता हूँ।"

वल्लभदासके सरसे पैर तक आग लग गयी। पर लाचार चुप-चाप खड़े रह गये। थोड़ी ही देर बाद पन्ना स्वयं सीढ़ियों पर दिखाई दी। ऊपरसे ही बोली—"वल्लभदास बाबू! सलाम! आप अब यहाँ क्यों आये? क्या आप नहीं जानते कि दीवालियों की मेरे यहाँ गुजर नहीं है? आपको मेरे यहाँ देखने पर यहाँ भी पुलिस आ पहुँचेगी। अभी चले जाइये, और फिर कभी यहाँ आनेकी चेष्टा न कीजियेगा। सलाम।"

इतना कह, पन्ना तेजीसे ऊपर चढ़ गयी। वल्लभदास मुँह देखते ही रह गये।

बारहवाँ परिच्छेद
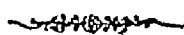
विपद्-बन्धु

ल्लभदास व्याकुल हो उठे। यह क्या जिसके लिये उन्होंने अपनी सुशीला गृहिणी पर ध्यान न दिया, नेकनामी-बदनामीका कुछ भी खयाल न किया, जिसके कारण उनका कारबार चौपट हो गया और वे समाजमें मुँह दिखाने लायक न रह गये, उसकी यह अवस्था! उसका ऐसा स्वार्थ-भरा नीरस व्यवहार! उनका दिमाग चक्कर खा गया। वल्लभदासके सरल हृदय पर इस घटनाकी एक गहरी चोट पहुँची। वे कुछ क्षण तक वहीं खडे खडे कुछ सोचते रहे। इस समय वह जमादार उनका चेहरा देख देखकर मुसकुरा रहा था। इसके बाद धीरे-धीरे उस मकानसे निकल पड़े। बाहर निकलते ही ऊपरसे एक जोरकी ठहाके की आवाज सुन पड़ी। इसके बाद ही किसीने कहा—"इस गलीमें अब कभी पैर न रखना। नहीं तो दुर्दशाकी जायगी।"

वल्लभदासने यह आवाज भी सुनी। आवाज उन्हें कुछ पह-चानी-सी मालूम हुई, परन्तु इस समय उनका मस्तिष्क चक्कर खा रहा था। उन्होंने उसपर कुछ भी ध्यान न दिया और तेजीसे कदम बढ़ाते हुए एक ओरको चल पडे। वे कबतक इसी तरह निरु-

द्देश्य भावसे चलते रहते, इसका कोई भी ठिकाना नहीं था। वे कहाँ जा रहे हैं, इसकी उन्हे स्वयं कोई खबर नहीं थी, पर एकाएक उनकी गतिमें बाधा पड़ी। ज्योंही वे एक गलीकी मोड़पर पहुँचे कि उन्हें रामू दिखाई दिया।

रामूको देखते ही उनका विकृत मस्तिष्क कुछ ठिकाने आ गया। वे कुछ सावधान-से हो पड़े और चाहते थे कि उसकी दृष्टि बचा एक ओरको निकल जायें, कि रामू सामने आ खड़ा हुआ। बोला-"इस इतनी रातमें आप इधर, इस गन्दे मुहल्लेमें कहाँ जा रहे हैं?"

वल्लभदास खड़े हो गये। पर कोई उत्तर न दे सके। अपने चारों ओरके मकान आदि देखने लगे। हाँ, वास्तवमें मैं कहाँ आ पहुँचा। यह तो महालक्ष्मीके पास आ गया।

उनसे कोई उत्तर न मिलता देख, रामूने फिर कहा—"घरमें तो सब कुशल है? आपका चेहरा इस तरह क्यों मुर्झाया हुआ है?"

वल्लभदाससे फिर भी कोई उत्तर देते न बन पड़ा। उनके सरमें एक बार जोरसे चक्कर आया, अपने कारबारका नाश, सुशीलाकी दुर्दशा और पन्नाकी बेवफाईका चित्र फिर उनकी आँखोंके सामने घूम गया। वे उसी स्थान पर बेहोश होकर गिर जाना ही चाहते थे, कि रामूने सम्हाल लिया। उन्हें गिरने न दिया। इसके बाद बहुत सावधानीसे उन्हें उठाकर पासके ही मकानके एक चबूतरे पर सुलाकर, उसने एक गाड़ी बुलायी और उन्हे उसमें बैठा, अपने साथ ले उनके मकान पर जा पहुँचा।

जिस समय उनको लिये गाड़ी वल्लभदासके मकान पर पहुँची,

उस समय रातके बारह बज चुके थे, ये कई घण्टे वल्लभदास निरुद्देश्य भावसे पागलोंकी तरह बम्बईकी सड़कें तथा गलियोंमें घूमते ही रहे थे। इसके बाद उसने दरवाजेमें जोरसे धक्का दिया। एक जमादारने उठकर दरवाजा खोला। सामने ही उसे एक गाड़ी खड़ी दिखाई दी और उसपर अध-लेटी अवस्थामें वल्लभदास बैठे दिखाई दिये। इस समय भी वल्लभदास अपने होशमें न थे। परन्तु और कोई भी मनुष्य उस गाड़ीमें उसे दिखाई न दिया।

जमादार कुछ क्षण तो उनके उतरनेकी राह देखता रहा, परन्तु जब वे न उतरे तो उसे कुछ सन्देह हुआ। इसी समय उस गाड़ीके कोचवानने कहा—"इनकी तबीयत खराब है, तुम उतार कर ले जाओ।'

जमादार गाड़ीमें चढ़ आया, पर वल्लभदासके शरीर पर हाथ लगाते ही वह चौंक उठा। वह तवेकी तरह गर्म हो रहा था। उस बेहोशीकी अवस्थामें कोचवान तथा उस जमादारकी सहायतासे वल्लभदास उतारे गये। दोनोंने पकड़कर उन्हें भीतर पहुँचाया। इसके बाद ही कोचवान गाड़ी लेकर चला गया। बोला—"जो मनुष्य इन्हें यहाँ पहुँचा गया है; उससे किराया मिल गया है।"

दिन भरकी थकी, चोटसे घायल, घटनाओंके आघात प्रति-घातसे व्याकुल, सुशीला चिन्तामें ही इस समय सो गयी थी। इस गड़बड़ीमें एकाएक उसकी नींद खुल गयी। उसने झपटकर अपने कमरेका दरवाजा खोला और ज्योंही इस भयानक अवस्थामें, वल्लभदासको दो मनुष्योंको पकड़कर लाते देखा, उसकी सुध-बुध

और भी जाती रही। वह घवड़ाकर उनकी ओर दौड़ पड़ी। स्वयं पकड़कर किसी तरह उन्हें पलग पर लेटाया। जमादार उन्हें लेटा-कर बाहर चला गया।

वल्लभदास अव भी वेहोश थे। रह रहकर कुछ वड़वड़ा उठते थे। चेहरा तमतमा रहा था, लाल सिन्दूरकी तरह हो रहा था। सुशीला अव क्या करे। इस समय उसका कोई भी सहायक न था। उसने एक वार हताश भावसे अपने चारो ओर देखा, पर वास्तवमें कोई भी दिखाई न दिया। वाहर दरवाजे पर केवल एक जमादार था—यदि उसे भी वाहर वुलाने भेज देती है, तो घरमें कोई भी नहीं रह जाता। शत्रु इस समय चारों ओरसे उवल पड़े हैं।

एक वार कुछ सीख देते हुए उसकी माताने कहा था—"वेटी ! गृहस्थीमें सुख-दुःख, आपद्-विपद् आया ही करती है। यदि कभी कोई विपत्ति आ जाये तो घवड़ा न उठना।" परन्तु यहाँ तो विपत्ति पर विपत्ति आती ही जाती थी। वह सभी विपत्तियाँ सहनेके लिये तैयार थी, परन्तु वल्लभदासके शरीरकी यह अवस्था ...सुशीला कातर हो पड़ी। पर फिर भी ठीक समय पर माताकी सीखने उसे कुछ सहारा दिया। उसने अपनेको सम्हाला। जल्दीसे उठकर लैवेण्डरकी शीशी उठा लायी। पानीमें मिलाकर, धीरे धीरे उनके माथेमें मलने लगी। थोड़ी ही देर वाद वल्लभदासने करवट वदली—आँखें खोल दीं। वोले—"मैं कहा हूँ ?"

सुशीला की आँखोंसे आँसू वहने लगे। उसने अपनेको वहुत सम्हालकर कहा—"आप अपने घरमें हैं। अव तवियत कैसी है ?"

पर वल्लभदासने कोई उत्तर न दिया। फिर बेहोश हो गये। सुशीला फिर उनके माथे पर पानीकी पट्टी देने लगी।

इसी समय किसीने बाहर जोरसे दरवाजा खटखटाया। सुशीला चौंक पड़ी। यह कौन आया। जमादार भी सावधान हो गया। सुशीला पलग छोड़, कमरेके दरवाजे पर जा पहुँची। जमादारने दरवाजा खोला—इसके बाद ही कोट-पैण्ट पहने, माथेमें हैट लगाये एक मनुष्य भीतर घुस आया। आते ही उसने पूछा—"यह वल्लभदासका मकान है?"

जमादारने कहा—"हाँ।"

आनेवालेने कहा—"मैं डाक्टर हूँ। अभी एक आदमी मुझे बुलाने गया था। वल्लभ बाबू बीमार हैं। मुझे यहाँ भेज, वह किसी कामसे चला गया है।"

सुशीला चकित हो पड़ी। मन-ही-मन बोली—"यह कौन विपद्-बन्धु है, जो इस तरह लुक-छिपकर सहायता दे रहा है?"

परन्तु इस समय, इन बातों पर ध्यान देनेका अवसर न था। सुशीला उन्हें अपने साथ ले वल्लभदासकी पलग के पास जा पहुँची। डाक्टरने अच्छी तरह उनकी परीक्षा करनेके बाद पूछा—"क्या घरमें कोई विचित्र घटना घटी है। इनके मस्तिकमें विकार पैदा हो गया है। मालूम होता है, कोई भारी सदमा पहुँचा है?"

पर सुशीलाको इसकी कोई भी खबर न थी कि वास्तव में क्या हुआ है। बोली—"कारबारमें एकाएक धक्का आ गया है, और तो मुझ कुछ मालूम नहीं।"

डाक्टरने फिर सावधानतासे परीक्षा कर कहा—"चिन्ताकी कोई बात नहीं है, पर बहुत सावधान रहना पड़ेगा। कितनी देरसे ये बेहोश हैं ?"

सुशीलाने कहा—"बेहोशी ही में गाड़ीसे उतारे गये हैं। कह नही सकती। कि कितनी देरसे इनकी ऐसी ही अवस्था है।"

डाक्टर कुछ चिन्तामें पड़ गया। कुछ सोचकर बोला—"अच्छा मैं दवा अपने आदमीके हाथ भेजता हूँ। आप चिन्ता न करें।"

सुशीला उसे फीसके रुपये देने लगी, पर उसने न लिया। बोला—"यह तो वह आदमी पहले ही मुझे दे गया है, जो बुलाने गया था। उसने दवाका दाम भी दे दिया है। आदमी भेजनेकी भी जरूरत नहीं है। मेरा आदमी दवा दे जायगा। आप सवेरे रोगीकी अवस्थाकी खबर भेज देंगी।"

इतना कह, अपना नाम और मकानके नम्बरका कार्ड देकर डाक्टर चला गया। सुशीला फिर वल्लभदासके सिरहाने जा बैठी।

अब वह रह रहकर यही सोचती थी कि यह कौन है, जो इस तरह समय पर सहायता करता है, परन्तु बहुत कुछ माथा लड़ानेपर पर भी उसकी समझमें कुछ नहीं आता था।

कभी कभी तो इसी घटना पर विचार करती करती वह काँप उठती थी। सोचती—इसमें भी नारी-रूप तो काम नहीं कर रहा है। मेरे इस रूप पर और किसीकी प्रलुब्ध दृष्टि तो नहीं जा पड़ी है। उस समय वह अपने रूपपर खिजला उठती—इच्छा होती कि

अभी उसे कुरूप बना डाले, परन्तु वह भी किये न होता था। इसमें भी बाधा पड़ती थी और वह बाधा यद्यपि थी कुछ दूसरे ही ढगकी, परन्तु उसमें सार भी था। एकबार उसकी शिक्षिकाने कितनी ही तरहके उपदेश देते हुए उससे कहा था—"अपने रूपपर हमेशा खयाल रखना। ऐसा उपाय बराबर करती रहना, कि तुम्हारा रूप न बिगड़ जाये। पुरुष जाति बड़ी स्वार्थिन और रूपकी लोभी होती है।" यद्यपि सुशीलाने उस समय यह बात हँसकर उड़ा दी थी, परन्तु अब उसे प्रत्यक्ष दिखाई देता था कि इतना रूप रहते भी केवल बाहरी आडम्बरके प्रलोभनमें पड़कर ही वल्लभदास पन्नाके फेरमें जा फँसे थे और रूपको बिगाड़नेकी इच्छा होनेपर भी क्या होता है, यह तो उसके बसकी बात न थी। सुशीला सोचती और सोचते-सोचते उसका मस्तिष्क कलान्त होता था। कुछ थाह पता न चलता था।

दो दिनोंकी अनवरत सेवा सुश्रूषाके बाद वल्लभदासको तीसरे दिन बहुत रात गये होश आया। उनके ज्वरका वेग भी बहुत कुछ घट गया था। ये तीन दिन उसे अनवरत जागते ही बीता था। परन्तु पति-प्राणामें इन बातोंका खयाल न था। वह चाहती थी, अपने पतिदेवका आरोग्य, जिसके लिये वह अकातर भावसे दिन-रात प्रार्थना किया करती थी।

एकाएक वल्लभदास आँखें खोल अकचकाकर चारों ओर देखने लगे। सुशीला उनकी पलगके पायताने बैठी धीरे धीरे उनके तलवे

सहला रही थीं। उन्हें आँखें खोलकर देखते देखा तो वह उनके सामने जा पहुँची। बोली—"कैसी तबियत है।"

वल्लभदासने क्षीण स्वरमें कहा—"अच्छी है। मैं कहाँ हूँ?"

सुशीलाने उनके कपालका पसीना पोंछते हुए कहा—"आप अपने घरमें है।"

वल्लभदास बोले—"मुझे यहाँ कौन ले आया?"

सुशीलाने नम्र स्वरमें कहा—"आप शान्त रहें, ज्यादा न बोलें। बहुत कमजोर हैं। भगवानने मेरे सिन्दूरकी लाज रख ली। कोई हितैषी पहुँचा गया।"

पर वल्लभदास अपनी स्मृतिपर जोर डालने लगे। बोले—"कोई मिला था जरूर, पर कौन था—याद नहीं आता।"

सुशीलाकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने वल्लभदासको दृष्टि बचा, आँसू पोंछे और उनके माथेपर धीरे-धीरे पखा झलने लगी। वल्लभदासने हाथसे पंखा हटाते हुए कहा—"मेरे लिये क्यों इतना कष्ट करती हो सुशीला! मैंने तो तुम्हे कोई सुख न दिया। यह दुर्दशा मेरे ही दुराचारोंके कारण हो रही है। यह अपमान, यह कारबारका नाश—यह सब मेरे ही दुष्कर्मोंके फल हैं।"

सुशीला घबड़ा उठी। कहीं फिर मस्तिष्क खराब न हो उठे। ज्वर न आ जाये, ये बेहोश न हो पड़ें। बोली—"यह सब वृथा है। यह तो समयका प्रभाव है और आपने जो कुछ बिगाड़ा, वह दो दिन बाद फिर हो जायगा। आप इस समय शान्त होकर सोयें।" इतना कह, उसने उठकर एक खुराक दवा और पिला दी। बोली—

"इस समय बोलनेसे आपकी तबीयत फिर खराब हो जायगी।"

इतना कह वह ज्योंही पखा लेकर उनके चेहरेके सामने आयी त्योंही उसने देखा, कि वल्लभदासकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। अब सुशीला अपनेको न सम्हाल सकी। उसे भी जोरसे रुलाई आने लगी परन्तु अपने मन और शरीरका सारा जोर लगाकर, उसने जबर्दस्ती अपनी रुलाई रोकते हुए, अपने आँचलसे उनके ये परितापके आँसू पोंछते हुए कहा—"यह क्या करते हैं। तबीयत खराब हो जायगी। फिर मैं क्या करूँगी?"

वल्लभदासने सुशीलाका हाथ पकड़ लिया। उसे प्रेमपूर्वक अपने हाथमें लेकर बोले—"सुशीला! मैं घोर अपराधी हूँ, परन्तु तुम मुझे क्षमा करना। मैंने तुम्हारे साथ बहुत बड़ा दुर्व्यवहार किया है।" परन्तु इसी समय एक विचित्र घटना घटी। एक खटकेकी आवाज हुई और साथ ही वल्लभदासकी दृष्टि सामनेकी ओर खुली हुई खिड़कीकी ओर जा पहुँची। क्षण भरमें ही उनका भाव बदल गया। वे घबड़ाकर पलग पर जोरसे उठ बैठे और "दुराचारिणी! विश्वासघातिनी! मुझे धोखा देना चाहती है।" कहकर सुशीलाको इस जोरसे धक्का दिया, कि वह पलगसे नीचे जा गिरी, बच्चे भी इस धमाकेकी आवाजसे घबराकर उठ बैठे और वल्लभदास फिर उसी तरह बेहोश होकर पलग पर गिर पड़े।

इसी समय बाहर जोरसे चोर चोरका हल्ला हुआ, फिर कुछ धर-पकड़की आवाज़ आयी। फिर मारका शब्द और चिल्लानेकी आवाज़।

सुशीला कुछ समझ ही न सकी कि यह क्या हो गया। बहुत दिन बाद उसे यह सुख प्राप्त हुआ था, वह भी क्षण भरमें ही विलीन हो गया। सुशीला घबरा उठी, अपना अपमान वह भूल गयी। वल्लभदासको इस तरह दुबारा बेहोश होते देख, वह दौड़कर लैवेण्डर ले आयी और माथेमें जलपट्टी देने लगी।

इसी समय किसीने जोरसे दरवाजे पर आघात किया। जमादारने दरवाजा खोला। दरवाजा खोलते ही दो मनुष्य एक खूबसूरत युवक को पकड़कर लिये भीतर आ पहुँचे। बोले—"यही मनुष्य खिड़कीसे झाँक रहा था। यह अवश्य ही चोर है।" सुशीलाने झांककर देखा। अब सारी बातें सुशीलाकी समझमें आ गयीं। वह समझ गयी कि हीरालालही खिड़कीसे झाँक रहा था। उस पर ही वल्लभदास दृष्टि पड़नेके कारण उत्तेजित हो उठे थे।

बाहरके मनुष्यों के मुँहसे यह समाचार सुन, वल्लभदासके जमादारने भी उसकी खासी मरम्मत की। इस समय वल्लभदास फिर होशमें आ चले थे। यह कोलाहल सुन वे उठकर पलँगसे उतरना ही चाहते थे, कि सुशीलाने रोका। बोली—"यह न होगा, आप पलंगसे न उतर सकेंगे।"

वल्लभदास उत्तेजित हो, उठे। बोले—"पापिनी! अपना अपराध स्वीकार कर! तूँ फिर मुझे रोकती है।"

इसी समय एक आदमी और भी जबर्दस्ती भीतर घुस आया। उसने इतने जोरका धक्का दिया कि हीरालाल लड़खड़ा कर उस कमरेके भीतर जा गिरा, जिसमें वल्लभदास और सुशीला थे।

इसके बाद, अपने शरीरका कम्मल उतारकर फेंकता हुआ बोला— 'कौन मेरी मालकिनको पापिनी कह सकता है ?"

इतना कह, वह झपटकर हीरालालकी छाती पर चढ़ बैठा। बोला—"सच बता, नहीं तो गला घोट दूँगा।" सबने देखा, यह कोई दूसरा नहीं, बल्कि रामू है।

हीरालालको इतनी मार पड़ी थी, कि उसके होश ठिकाने न थे। इस समय उस बलिष्ठ मनुष्यको अपनी छातीपर देख, उसका रहा सहा होश भी जाता रहा। वह कातर-स्वरमें उससे छोड़ देनेकी प्रार्थना करने लगा, परन्तु रामूने न छोड़ा। बोला—"सच बता, तू यहाँ क्यों आया था। एक वाक्य भी झूठ निकला तो गला घोंट दूँगा। मैं सब जानता हूँ।"

इसके उत्तरमें हाथ बढ़ाकर सुशीला के पैर छूते हुए हीरालालने जो कुछ कहा, वह बड़ा ही रहस्यपूर्ण, भयकर और मर्म-स्पर्शी था।

तेरहवाँ परिच्छेद

सुशीला-हरण

रालालवाली घटना घटे कई दिन हो गये थे। यद्यपि उसका रोना कलपना और क्षमा माँगना देखकर सुशीला और रामूने उसे छोड़ दिया था, परन्तु साथ ही उसे सावधान भी बहुत कुछ कर दिया था। वल्लभदासकी तवीयत अच्छी हो गयी थी। उन्होंने इसी बीच अपना निजका मकान और फालतू सामान बेचकर बाजारके सब रुपये चुका दिये थे। अब किसीका कुछ देना न था। सुशीला मन ही मन समझती थी, कि उसका खोया हुआ रत्न फिर उसे वापस मिल गया। वह रामूकी खोजमें थी। परन्तु रामूका कहीं कोई पता न मिलता था। उस दिनसे वह ऐसा गायब हुआ कि फिर दिखाई न दिया। सुशीला उसके लिये मन ही मन चिन्तित हो रही थी। पर एक तरहसे वह सुखी थी। अब वल्लभदास उसे छोड़कर यद्यपि कहीं जल्दी जाते न थे, परन्तु उनका चेहरा उदास दिखाई देता था। सुशीला समझती थी कि इसका कारण धना-भाव है और वह इसके लिये उन्हें बहुत कुछ समझा बुझाकर आश्वासन देनेकी चेष्टा किया करती थी।

वल्लभदासकी बीमारीके कारण उस मार-पीटवाले मुकदमेकी तारीख बढ़ जाती थी। परन्तु इतने पर भी वल्लभदासको अपने पक्षके गवाह वगैरह जुटानेका अब तक न तो अवसर मिला था और न वे इतना प्रपच जानते और समझते ही थे। एकाएक मुक-दमेवाली तारीख आ पहुँची। वल्लभदास भगवानके भरोसे कोर्टमें जाकर हाजिर हो गये। साथमें उनके ही कुछ जमादार तथा एकाध कर्मचारी थे। अपना एक वकील भी उन्होंने किया था, परन्तु धनाभावके कारण कोई अच्छा वकील न कर पाये थे।

मुकद्दमा आरम्भ हुआ। विपक्षीदलने अपना बयान दिया, उसके गवाहों की गवाही भी बड़ी सुन्दर हुयी। उनकी गवाहियोंसे इनपर मुकद्मा प्रमाणित हुआ। अब वल्लभदासकी बारी आयी। इन्होंने, अपनेको निर्दोष बतलाया। वास्तविक घटनाएँ कह सुनायीं, पर उस समय इनकी जबानबन्दी जो कोई सुनता वह यही कहता कि इन्हें अपने तनोबदन की सुध नहीं है।

वास्तवमें बात ऐसी ही थी। वल्लभदासको उस कटघरेमें खड़े होकर, जबानबन्दी देना घोर अपमानजनक मालूम हो रहा था। इससे उनकी सुध-बुध एक प्रकारसे जाती रही थी। ओह! इस जरा-सी चूकने कितना बड़ा अनर्थ कर डाला था, खड़े थे, वे मैजिस्ट्रेटके सामने। उत्तर देते थे, मैजिस्ट्रेटके प्रश्नोंका पर उनकी आँखोंके सामने इस समय पन्ना घूम रही थी। जिस पन्नाके लिये उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति गँवा दी, जिसकी बदौलत आज यह

अवस्था हो रही है। वही पन्ना इतनी बेवफा निकली। रह-रहकर उनके सरमें चक्कर आ जाता था।

इसी समय सफाई पक्षके गवाह पेश करनेकी आज्ञा हुई। वल्लभदास इधर-उधर देखने लगे—परन्तु एकाएक उनके आश्चर्य-का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा—उसी दिनवाला मनुष्य अपने साथ कितने ही मनुष्योंको लिये आ पहुँचा। ये मनुष्य उस दिनके पावनेदारोंके थे, जो रुपये चुकाने आये थे। और भी उन्होंने देखा कि उस मनुष्यका अदालतमें बड़ा मान है। उसने आनेके साथ ही मैजिस्ट्रेटको अभिवादन कर कहा कि अपराधीके पक्षके गवाह हाजिर हैं।"

वल्लभदास मन-ही-मन सोचने लगे—यह उपकारी वन्धु कौन है।

वल्लभदासके पक्षके गवाहोंकी गवाहियाँ हुयीं। सबने सच्ची बातें कहीं! मारपीटसे सबने ही इनकार किया। इसके बाद उस अपरिचित मनुष्यकी बहस और राधारमणके जमादारसे जिरहने तो और भी गजब ढाया। मैजिस्ट्रेटको विश्वास हो गया कि यह मुकद्दमा झूठा है। वल्लभदास निरपराध कहकर छोड़ दिये गये। उसने एक बार मुसकुराकर वल्लभदासकी ओर देखा और उस कमरेसे निकल-कर चला गया। वल्लभदासको बात करनेका भी उसने अवसर न दिया। लाचार वल्लभदास इधर-उधर उनका परिचय पूछने लगे। पर इतना ही मालूम हुआ कि ये हाईकोर्टके एक नामी बैरिस्टर हैं। इस मुकद्दमेमें किसने उन्हें नियुक्त किया। कैसे आये। इन बातोंका कुछ भी, पता न लगा। उन गवाहोंसे पूछनेकी चेष्टा की कि तुम्हें

कौन बुला लाया, पर वे भी गायब ! लाचार वल्लभदास वैसे ही घर लौट आये।

आते ही उनकी दृष्टि सुशीलापर पड़ी। वह इस समय पूजन-पर बैठी हुई थी, सामनेही कृष्णचन्द्रकी मूर्ति रखी हुई थी जिसे रह रहकर वह प्रणाम करती थी। केश खुले हुए थे। शरीरपर रेशमी वस्त्र शोभा दे रहा था। सुशीलाकी इस समयकी सुन्दरता और चेहरेका तेज देखकर वल्लभदास मुग्ध हो गये। मन-ही-मन बोले— "यह देवी है, परन्तु मैं अभागा इसका आदर नहीं कर सका" इसके बाद सुशीला प्रार्थना करने लगी। वल्लभदास खड़े-खड़े उसकी रूप-सुधा अतृप्त नयनोंसे पान करते रहे। प्रार्थना समाप्तकर सुशीला बोली—'प्रभो ! मेरा तुम्हारे सिवा और कोई सहायक नहीं है, परन्तु उनका अमंगल न हो। यदि मैंने जीवन में कभी भी असत्य-पर पैर न रखा हो तो आज भी उनको उसी तरह छुड़ा देना प्रभो !" सुशीलाकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा वहने लगी। वह कातर स्वरसे बार-बार भगवानसे दया-भिक्षा माँगने लगी।

इसी समय वल्लभदासने जरा पीछे हटकर आड़में होकर कहा— "मैं उसी दिनकी तरह छूट आया सुशीला।"

सुशीला चौंक पड़ी। घूमकर इधर-उधर देखने लगी। पर कोई दिखाई न दिया। वल्लभदास अपनी पलगपर जाकर लेट गए।

सुशीला पूजा समाप्त कर उठ खड़ी हुई और लपकती हुई अपने कमरेमें आ पहुँची। आकर उसने देखा—वल्लभदास आँख मूँदे पलंगपर पड़े हुए हैं। वह कातर नयनोंसे उनकी ओर देखने लगी,

आँखोंसे फिर आँसू जारी हो गये। पर ये आनन्दाश्रु थे। मन-ही-मन अपनी कातर पुकार सुननेके लिये वह भगवान को धन्यवाद देने लगी। इसी समय वल्लभदासने आँखें खोल दीं। और मुस-कुराकर सुशीलाकी ओर देखा।

सुशीला बोली—"आपको आये कितनी देर हो गयी।"

वल्लभदासने कहा—"बहुत देर हुई।"

सुशीलाने कहा—"हमें पुकारा क्यों नहीं ?"

वल्लभदास बोले—"तुम्हारी प्रार्थनामें बाधा देना उचित नहीं समझा।"

सुशीला—"फिर किसने कहा था, कि मैं उसी तरह छूट आया।"

वल्लभदास—"मैंने।"

इतना कह, उन्होंने सुशीलाको खींचकर अपने पास बैठा लिया। बोले—"ठीक उसी दिनकी तरह छूट आया सुशीला! आज भी वही उपकारी बन्धु, उस दिनके पावनेदारोंको गवाह-स्वरूपमें लिये ठीक समयपर आ गया। उसकी बहस और जिरहमें राधारमणका जमादार और उसके गवाह ठहर न सके। मुझे उसने तुरन्त छुड़ा दिया।"

सुशीला विनम्र हृदयसे आकाशकी ओर देखने लगी। देखती देखती बोली—"उस मंगल-मयके मंगल-विधानको कौन जान सकता है। हमलोग सांसारिक मनुष्य अपने ही अहकारमें भरे रहते हैं। अच्छा, कुछ मालूम हुआ, कि वे कौन हैं ?"

वल्लभदास इस समय उसकी मुख-श्री देख रहे थे, बोले—

"कुछ नहीं, इतना ही मालूम हो सका कि वे हाईकोर्टके कोई नामी बैरिस्टर हैं।"

"और नाम !"

वल्लभदासने कहा—"नाम तो मैं नहीं जान सका और न पूछा ही।"

सुशीला चुपचाप कुछ देरतक खड़ी कुछ सोचती रही। उसके बाद बोली—"मेरी इच्छा है, कि आज ही सध्याको हमलोग महालक्ष्मी का दर्शन कर आयें। आपको भी मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

वल्लभदासने कहा—"तो तैयार हो जाओ, सध्या होनेमें तो अब विलम्ब नहीं है।"

इतना कह, वल्लभदास कुछ सोचने लगे थोड़ी देर बाद बोले—"बड़े भाग्यसे तुम जैसी स्नेहमयी पत्नी मिलती है, सुशीला ! परन्तु मैं तुम्हारा वास्तविक आदर न कर सका।"

सुशीला जाना चाहती थी, खड़ी हो गयी। बोली—"यह भी जानते हैं, कि ज्यादा खुशामद करनेसे स्त्रियोंका दिमाग आसमानपर चढ़ जाता है। कुत्ता मुँह चाटने लगता है—आप आज फिर वही काम करने लगे।"

वल्लभदासने कहा—"एक पाप उदय हुआ था सुशीला ! पर अब वह नशा उतर गया और खुमार भी जाता रहा। विपत्तिने तुम्हारा असली रूप प्रत्यक्ष कर दिया।"

सुशीला बोली—खैर, सुबहका भूला यदि शामको घर आ जाये तो कोई चिन्ता नहीं, पर विपत्तिका उपदेश सदा याद रखना चाहिये।

एकाएक वल्लभदासका चेहरा उदास हो गया। बोले—"सुशीला! पर मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करनी होगी।"

सुशीला बोली—"वह क्या?"

वल्लभदासने दुःखित चित्तसे कहा—"देखो, यह मकान भी विक गया। दो चार दिनोंमें इसे खाली करना होगा। ये इतने नौकर चाकर रखनेकी भी मुझमें शक्ति नहीं है। तुम सदा सुखमें पली हो, दुःखकी कभी हवा भी नहीं लगी है। इन बच्चोंको भी कष्ट होगा। अतएव, तुम इन्हे लेकर मायके चली जाओ, कुछ दिन वहाँ रहो, मैं जरा कारवार सम्हाल लूँ, तो फिर तुम्हें ले आऊँगा।"

इतना कह उत्तरकी आशासे वल्लभदास सुशीलाकी ओर देखने लगे। आज वहुत दिन वाद सुशीलाके चेहरेपर आनन्दकी किरण दिखाई दी थी, पर वल्लभदासकी इस वातने उसपर विषादका वादल छा दिया। वह कुछ देर तक वल्लभदासका चेहरा देखती रही, इसके वाद वोली—"आपने मुझे क्या केवल सुखकी संगिनी समझा है?"

वल्लभदास बोले—"तुम्हारे और इन बच्चोंके भले के लिये ही कहता हूँ। तुम तो जानती हो कि मेरा सर्वस्व चला गया! अव कुछ नहीं है, तुम्हारे जेवर भी सब चले गये अव जो रह गये हैं, वे कुछ भी नहीं हैं। उनसे एक मासका भी खर्च नहीं चल सकता।"

सुशीला वोली—"हाँ, सुना है वेश्याएँ ऐसा ही करती हैं, या वे स्त्रियाँ ऐसा करती होंगी, जिन्हें अपना अधिकार और अपना नाम तथा सुख ही सर्वस्व हो। परन्तु जन्म-कालसे ही पतिके

घरको अपना घर, पतिके सुखको अपना सुख और पतिकी सेवा ही अपना धर्म का उपदेश मिला है, उनके लिये, धनी या निर्धन दोनों ही अवस्थाएँ समान हैं, आपको, इतना विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

वल्लभदासने कुछ कुण्ठित स्वरमें कहा—"सुशीला! पर मेरा भी कोई कर्त्तव्य है, जिस तरह स्त्रीका यह कर्त्तव्य है कि पतिके सुखका हमेशा खयाल रखे। उसी तरह पतिका भी यही कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नीको दुःखकी हवा न लगने दे अपने इस कर्त्तव्यको भूल जानेके कारण ही मेरी यह दुर्दशा हुई है। अतएव अपने इस पापका प्रायश्चित्त कठोर परिश्रम द्वारा करूँगा और देखूँगा कि मेरा भाग्य फिर पलटा खा सकता है या नहीं। यदि भगवानने सुन ली तो कोई चिन्ता नहीं, तुरन्त तुम्हे ले आऊँगा, नहीं, तो फिर तुम्हें कष्ट भोगना ही पड़ेगा।"

सुशीलाने गम्भीर स्वरमें कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। चाहे जैसी अवस्था हो, इस विपत्तिमें मैं आपका साथ नहीं छोड़ सकती।"

वल्लभदास सोचमें जा पड़े। बहुत देर तक सोचते रहनेके बाद बोले—"अच्छा देखा जायगा, परन्तु तुम्हारा यह हठ अच्छा नहीं है।"

सुशीलाने कहा—"यह हठ नहीं, और न आपकी भलाईके विचारसे कहती हूँ। यह तो नारी-कर्त्तव्य है—इसीमें नारी-सुखकी पराकाष्ठा है।"

इन बातोंमें ही सध्या हो चली; जल्दी जल्दी दोनोंने स्नान

किया। और लड़कोंको साथ ले महालक्ष्मीकी ओर रवाना हो गये। सुशीलाके बहुत आग्रह करने पर वल्लभदासने अपने एक जमादार-को भी साथ ले लिया।

सभी तेजीसे एक गाड़ी ले महालक्ष्मीकी ओर रवाना हुए। आज अपने घरकी जोड़ी-गाड़ी न देख वल्लभदास को कुछ बुरा ही मालूम हुआ पर उन्होंने अपना यह भाव सुशीलापर प्रकट न होने दिया।

महालक्ष्मी पहुँचते पहुँचते सन्ध्या हो गयी। इसके बाद दर्शन इत्यादिसे निवृत्त हो जिस समय ये लौटे हैं, उस समय भरपूर अँधेरा हो गया था।

जिस समयकी बातें हम लिख रहे हैं, उस समय बम्बईकी अवस्था आज जैसी उन्नत नहीं थी, खासकर महालक्ष्मीके उस प्रान्त में बहुत ही सन्नाटा छा रहा था। अतएव, जिस समय इनकी गाड़ी समुद्रके किनारेवाली सड़कसे थोड़ी ही दूर आगे बढ़ी होगी कि एकाएक एक बागमें से कई बड़े मोटे ताजे जवान निकलकर इनपर टूट पड़े। एक ही लाठीकी चोटमें कोचवान नीचे गिरा और कराहता हुआ एक ओर भाग खड़ा हुआ। वल्लभदासका दरवान सामना करनेके लिये उतरा पर वह भी इनका मुकाबला न कर धराशायी हुआ। इस उपद्रवमें वल्लभदास भी गाड़ीसे उतरकर रक्षा करनेका उद्योग करने लगे। इतनेमें ही उनमेंसे एकने चिल्लाकर कहा—"कचहरीसे तो बचकर आ गये, पर देखूँ यहाँ तुम्हें कौन बचाता है।" इतना कह, उसने जोरसे एक लट्ठ मारा, पर लट्ठ

उन्हें न लगा सुशीला बीचमें आ गयी, उसकी पीठमें गहरी चोट आयी और उसी समय वह बेहोश हो गिरी। वल्लभदासको बेतरह क्रोध चढ़ आया, उन्होंने उछलकर एकके हाथकी लाठी थाम ली, परन्तु इसी समय किसीने पीछेसे इस जोरसे उनके माथेपर लट्ठ मारा कि वल्लभदासका माथा फट गया, जिससे वहीं खूनका फव्वारा छूटने लगा और वे उसी स्थानपर चक्कर खाकर गिर पड़े। अब केवल बिलखते हुए वे दोनों बच्चे गाड़ीमें बैठे थे। उन पिशाचोंने एकबार उनकी ओर देखा। इसके बाद गाड़ीसे उतारकर उन्हें जमीनपर बैठा दिया।

अब वे सुशीलाकी ओर झुके। सुशीला उस समय जमीनपर बेहोश पड़ी हुई थी। उन्होंने उसकी पीठ देखी। एक बोला—"चोट ज्यादा नहीं है, पूरी लाठी बैठती तो जान ही निकल जाती। पर, अब जल्दी करो।"

इसके बाद, उन्होंने सुशीलाको उठाकर उसी गाड़ीपर लादा। एक मनुष्य कोचवानकी जगह जा बैठा और दो गाड़ीमें जा बैठे। घोड़ेको एक जोरकी चाबुक लगी और वे हवासे बातें करने लगे।

वल्लभदास, जमादार, सब उसी स्थानपर बेहोश-से पड़े रहे। दोनों लड़के सड़कके किनारे बैठे अपनी माँको इस तरह जाते देख, जोरसे चिल्ला उठे, परन्तु उनकी चिल्लाहट उस अन्धकारमय सुनसान-पथ प्रान्तमें यों ही विलीन हो गयी, किसीने भी उस ओर ध्यान न दिया।

चौदहवाँ परिच्छेद

रहस्य-भेद

आज आनन्दमोहनके यहाँ जलसा है। उनके एक अभिन्न हृदय मित्र विदेशसे अतुल कीर्ति और अथाह धन उपार्जन कर, कई वर्षों बाद लौटे हैं। उनके स्वागतमें आजका यह समारोह हो रहा है। आनन्दमोहनने आज अपने सभी इष्ट मित्रोंको निमत्रण दिया है, राधारमणको भी निमंत्रण है। इस समय वह इनके परम स्नेहियोंमें हो रहा है। एक तो आनन्दमोहनका भवन स्वयं ही विशाल और दर्शनीय है, तिसपर आज उसकी ऐसी सजावट की गयी है, कि सभी आने-जानेवालोंका मन अपनी ओर खींच लेता है। आनन्दमोहन स्वयं सब प्रवन्ध देख रहे हैं।

देखते देखते रातके आठ बज गये। बिजलीकी रोशनीसे वह महल चमक उठा। निमन्त्रित पुरुषोंकी भीड़ आने लगी। थोड़ी देर बाद राधारमण भी हीरालालके साथ आ पहुँचा। ठीक समयपर, घड़ीके लंगरकी तरह सब कार्य होने लगे। आनन्दमोहनने आज अभूत-पूर्व तैयारी की थी। दस बजते बजते भोजन समाप्त हुआ। सब तरहके स्वादिष्ट भोजनोंसे अपने बन्धु-बान्धवोंको तृप्तकर आनन्दमोहन उन्हे लिये एक बहुत बड़े कमरेमें जा पहुँचे। इस

कमरेकी सजावट दर्शनीय थी। विलासकी सारी सामग्रियोंसे कमरा जगमगा रहा था और आनन्दमोहनकी अतुल सम्पत्ति तथा असाधारण वैभवका पूरा पूरा परिचय दे रहा था। इस कमरेमें गाने-बजानेका प्रबन्ध था। बम्बई तथा गोवाकी नामी नामी गायिका वेश्याओंको बुलाया गया था। वे इस समय उसी कमरेमें एक ओर बैठी हुई थीं। सजा-सजाया कमरा उनके रूपकी छटासे और भी जगमगा रहा था।

मित्र-मण्डलीके इस कमरेमें आते ही गाना आरम्भ हो गया। कोकिल-कण्ठा गायिकाओंकी सुमधुर तानोंसे वह कमरा मुखरित हो उठा। सब शान्त होकर उस मधुर ध्वनिका आनन्द लेने लगे।

रातके बारह बजेतक अपनी मित्र-मण्डलीका स्वागत करते करते आनन्दमोहन कुछ थक से गये। अतएव, वे उनसे दस मिनिटका समय लेकर, विश्राम करनेके लिये अपने एकान्त कमरेमें चले गये। जाना ही चाहते थे कि राधारमण उनसे बिदा लेकर चला गया। उसे बिदाकर आनन्दमोहन विश्रामके लिये चले आये।

यह छोटा सा कमरा उस बड़े कमरेसे थोड़ी दूरपर था, जिसमें इस समय गाना बजाना हो रहा था। आनन्दमोहनका ऐसे अवसरों के लिये यही एकान्त विश्राम-गृह था। इस कमरेमें आते ही उन्होंने वहाँ रखी घण्टी बजा दी। उनका नौकर आ पहुँचा। उसने इशारा पाकर एक बोतल निकाली, जिसमेंसे थोड़ी सी कोई दवा डाल कर आनन्दमोहनने पी ली और बोतल उस मनुष्यके हाथमें देते हुए बोले—"तू जा और यमुनाको भेज दे।"

भृत्य चला गया । थोड़ी ही देरमें बाइस-तेइस वर्षकी एक दासी उस कमरेमें आ पहुँची । दासीका रंग रूप यद्यपि साँवला था, पर बातचीतमें चतुर थी । बड़े आदमियोंके घरमें ही सदैवसे पली है । यमुनाके आते ही वृद्ध आनन्दमोहनने उसकी ओर देखकर कहा—"क्यों री ! तेरी मालकिन कहाँ हैं ?"

यमुनाने मुसकुराते हुए कहा—"क्यों, अभीतक तो ऊपर खिड़कीसे तमाशा देख रही थीं । अभी जाकर सोयी हैं ।"

आनन्दमोहनने पूछा—"क्या नींद लग गयी ?"

यमुना शारदाकी खास दासी थी, दिन-रात उसीके साथ रहती थी । वृद्धके मनकी बात समझकर बोली—"क्या भेज दूँ ।"

वृद्धने ठण्डी साँस ली । बोले—यमुना ! उन्हें गरज होती तो स्वयं ही न मेरे एकान्तमें आनेकी राह देखती रहतीं । बुलानेसे क्या लाभ ।

यमुना मन-ही-मन मुसकुरायी । बोली–कहती थीं, आज सरमें कुछ दर्द है, रातमें शायद अधिक जाग न सकूँगी । नहीं तो क्या वे आपकी सेवामें आये बिना रहतीं । ऐसी बढ़िया तो मालकिन मैंने नहीं देखी । दिन-रात आपकी ही चिन्तामें रहती हैं, दिन-रात भगवानसे आपका शरीर अच्छा रखनेके लिये प्रार्थना करती रहती हैं ।

वृद्धने एक सन्तोषकी साँस लेकर कहा—"क्या सचमुच ऐसा है । यमुना ! मैंने तो सुना है, कि वृद्धावस्थामें विवाह करनेसे स्त्रियाँ प्रेम नहीं करतीं, पुरुषको पछताना पड़ता है ।"

यमुनाके चेहरेपर लज्जाकी एक लालिमा छा गयी । परन्तु

उसने तुरन्त ही अपनेको सम्हाल वृद्धकी ओर देखते हुए कहा— "दूसरों की तो मैं क्या जानूँ, पर मेरी मालकिन कुछ दूसरे ही साँचे की ढली हैं, मैं तो यही देखती हूँ कि वे आपके नामकी ही माला जपा करती हैं। सदा आपके लिये चिन्तित रहती हैं।"

वास्तवमें वृद्ध आनन्दमोहन शारदाको जी-जानसे प्यार करते थे। अपना सर्वस्व उसपर न्योछावर किये बैठे थे, परन्तु जैसा वे चाहते थे, वैसा प्रेमका प्रतिदान उन्हे न मिलता था। इसलिये आज उसकी दासीसे अपने प्रति शारदाके प्रेमकी बात सुनकर उन्हें अत्यन्त आनन्द आ रहा था। कुछ देरतक चुप रहने बाद आनन्दमोहनने कहा—"उन्हें कोई तकलीफ तो नहीं है।"

यमुना बोली—"तकलीफ कौन सी होगी, परन्तु यह देखती हूँ कि कभी कभी वे एकान्तमें रोती रहती हैं।"

वृद्ध चौंक पड़े। बोले—"एकान्तमें रोती रहती हैं। तूने कारण नहीं पूछा, यमुना! मेरे सरकी क़सम! सच बता, इस रोनेका कारण क्या है?"

यमुना वृद्धकी व्याकुलता देखकर मन ही मन हँसी, परन्तु चतुराने अपने मनका भाव फिर भी प्रकट न होने दिया। वृद्धकी तीक्ष्ण दृष्टि उसके हृदयको बेधकर भीतर न पहुँच सकी। यमुना कुछ देरतक चुप रहकर कुछ सोचती रही। इसके बाद बोली—"जानती अवश्य हूँ, पर आपसे कहनेमें संकोच होता है। शायद आप नाराज हों।"

इसी समय उस बड़े कमरेमें एक गायिकाने गाया—

"प्रेम अन्ध करि देत"

आनन्दमोहनने एक ठण्ढी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—"सच्ची बात तो है।" इसके बाद यमुनाकी ओर देखकर कुछ उदास भावसे बोले—मैं क्यों नाराज होऊँगा, यमुना! मैं तो तुम्हारी मालकिनका रत्ती भर दुःख नहीं देख सकता। सब तरहसे सुखी रखनेकी ही चेष्टा किया करता हूँ। 'बता, जल्द बता, क्या बात है?'

यमुना कुछ संकोच दिखाती हुई बोली—"बहुत पूछने पर एक दिन कहती थीं कि सबसे बड़ा दुःख तो यह है कि मेरे मालिक मुझ-पर विश्वास नहीं करते। वे मुझे सोनेके पींजड़ेमें बन्द रखना चाहते हैं।"

आनन्दमोहन इस बार हँस पड़े। बोले—"बस इतने ही के लिये।" तूने उन्हें समझाया नहीं। कि यह अविश्वास नहीं। प्रेम है, कभी तुम्हें आँखोंकी ओट नहीं होने देना चाहते।

यमुनाको अब यहाँ अधिक रहना अच्छा न मालूम हो रहा था। कुछ उकता-सी गयी थी। बोली—"मैं दासी होकर इतना क्या जानूँ। यदि इतना ही जानती तो फिर दासी-वृत्ति ही क्यों करती। अच्छा, अब आज्ञा दीजिये। क्या मालकिन को भेज दूँ?"

वृद्धने कुछ सोचकर कहा—"नहीं; सोने दो। अब रातमें कष्ट न दो। मुझे तो रातभर जागना पड़ेगा। वह जल्सा सवेरा होनेके पहले समाप्त न होगा।"

यमुना घबड़ायी-सी चली गयी। मानो उसकी जान बची।

वृद्ध हाथ पैर फैलाकर एक खाटपर लेट गये। आँखें बन्दकर कुछ सोचने लगे।

इसी समय एक मनुष्य काली चादरसे अपनेको छिपाये, उस कमरेमें आकर उस वृद्धको देखने लगा। वृद्धको आँखें बन्द किये पड़े देख उसने धीरे-से खाँसा। खाँसनेकी आवाज सुनते ही आनन्दमोहनने चौंककर आँखें खोल दीं। एक अपरिचित मनुष्य को इस तरह अपनी एकान्त कोठरीमें देखकर उनके विस्मयका ठिकाना न रहा। वे फिर भी भृत्यको बुलाना ही चाहते थे, कि उस मनुष्यने धीरेसे कहा—"मैं आपका मित्र हूँ। शत्रु नहीं। उस दिन मैंने ही ढेलेमें बाँधकर पत्र फेंका था, पर उस दिनसे आपसे मिलनेका अवसर न मिला। आज मौका पाकर इस भीड़भाड़में घुस आया हूँ।

वृद्ध कुछ आश्वस्त हुए। बोले—तुम तो योंही खबर देकर आ सकते थे।

उसने कहा—"नहीं, राधारमणका आपके घरमें कहाँ तक अधिकार है। आप नहीं जानते और मैं भी आपको प्रत्यक्ष प्रमाण दिखा देना चाहता था।"

वृद्धने कहा—"प्रत्यक्ष प्रमाण। वह क्या है और तुम कौन हो?"

अपरिचित बोला—"मेरा परिचय अभी इतना-ही है, कि मैं आप लोगोंका सेवक हूँ। इसके बाद शत्रुओंसे बदला ले लेनेके बाद अपना पूरा परिचय बतलाऊँगा।"

आनन्दमोहन बोले—"वह शत्रु कौन है?"

अपरिचितने कहा—"उसी दिन पत्रमें बता दिया था कि राधा-

रमण और उसका बन्धु। इन लोगोंने मिलकर ही वल्लभदासका सत्यानाश किया है और आपके पीछे भी हाथ धोकर पड़े हैं।"

आनन्दमोहन सीधे होकर बैठ गये। बोले—"मेरे पीछे ?"

अपरिचितने कहा—"इसमें तनिक भी आश्चर्यकी बात नहीं है। यह स्मरण रखें कि मैं एक भी शब्द झूठ नहीं कहता इसके बाद सुशीलापर राधारमणकी दृष्टि पड़नेसे लेकर पन्नाके यहाँ उसे पहुँचाने, जमादार द्वारा वल्लभदासका अपमान और मुकद्दमेकी सारी बातें उसने बताते हुए कहा—"अब आप समझ गये होंगे कि सरल स्वभाव वल्लभदासको किस तरह और किस पापाचारकी इच्छासे विपत्तिमें डाला गया है।" सुनकर आनन्दमोहन अवाक् हो गये और आश्चर्यसे उस मनुष्यका चेहरा देखने लगे।"

अपरिचितने उनको इस तरह अपनी ओर देखते देखकर कहा—"क्या आपको मेरी बातपर विश्वास नहीं होता ?"

आनन्दमोहनने कहा—"बात कुछ-कुछ समझमें आती है और वह हीरालाल कौन है ?"

अपरिचितने कहा—राधारमणका बन्धु। परन्तु अब उसकी ओरसे खटका नहीं है। वह सीधा हो गया है। इतना कह उस दिन रातवाली घटना उसने कह सुनायी। सुनकर आनन्दमोहन तो आश्चर्य-सागरमें गोते खाने लगे। थोड़ी देर बाद बोले—"परन्तु तुमने मुझे क्यों सावधान किया था।"

अपरिचित बोला—"आप सावधान हो जाइये। अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा है, पर अब विलम्ब होने से........"

आनन्दमोहनने कहा—"क्या होगा ?"

अपरिचित बोला—"यह अपनी जबानसे मैं नहीं निकाल सकता। मेरे साथ आइये।"

आनन्दमोहन उठ खडे हुए अपरिचित उन्हे साथ लेकर मकानके भीतरी भागमें घुसा। इस समय मकानका भीतरी भाग सन्नाटा हो रहा था। सभी नाच-गाना देखने सुननेमें लगे थे। अपरिचित उन्हें साथ लिये मकानके पिछले भागमें जा पहुँचा। इसके बाद एक सजी-सजायी कोठरीके बन्द दरवाजेपर उन्हे ले जाकर खड़ा करता हुआ बोला—"भीतर देखिये।"

वृद्धने भीतरकी ओर देखा। उस एकान्त कोठरीमें एक सुन्दर सोफा पर हाथमें हाथ दिये राधारमण और शारदा बैठे थे। उन दोनोंमें धीरे-धीरे कुछ बातें हो रही थीं।

यह दृश्य देखकर वृद्धके माथेमें चक्कर आ गया। क्या इतने प्रेमका यही प्रतिदान ? वह बेहोश होकर उसी जगह गिर पडते पर उस अपरिचितने उन्हें सम्हाल लिया और गोदमें उठा, उसी कमरेमें ले जाकर पलगपर सुला, दबे-पाँव उक्त पथसे उस मकानके बाहर चला गया।

इस समय भी उस बड़े कमरेमें गाना बजाना जमा हुआ था और उनकी मित्रमण्डली आनन्दसे उस सगीत-लहरीमें स्नान कर रही थी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

आफत पर आफत
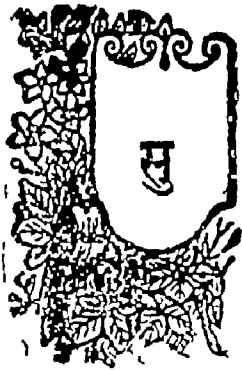
सुशीलाको गाड़ीमें चढाकर भगा ले जानेके थोड़ी ही देर वाद दो मनुष्य उसी पथपर आते हुए दिखाई देते हैं। दोनों ही काली चादरमें अपनेको छिपाये हुए हैं और दोनों ही तेजीसे पैर बढ़ाये, दक्षिणसे उत्तर महालक्ष्मीवाली सड़कपर जा रहे हैं। चारों ओर अन्धकार छा रहा है, वहुत दूर दूर पर लालटेनकी, रोशनी अपना क्षीण प्रकाश थोड़ी दूर तक फैलाकर फिर अधकारमें लीन हो जाती है।

उनमेंसे एक एकाएक वोल उठा—"यहाँ तो कुछ भी मालूम नहीं होता, क्या हमलोगोंको मिथ्या समाचार मिला?"

दूसरा कुछ न वोला। उसने एक बार हूँ, किया और अपनी चाल और भी तेज कर दी। थोड़ी ही देर बाद दोनों ठीक उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ यह घटना घटी थी। अब तक वल्लभदास उसी तरह वेहोश पड़े थे, जमादारकी खोपड़ीमें बहुत बड़ा जखम हो गया था और उससे अजस्र रक्तधारा बहकर सड़कको भिगो रही थी। वल्लभदासके माथेका घाव भी साधारण न था।

दोनों बच्चे निराश भावसे चिल्ला रहे थे, परन्तु उस स्थानमें कोई भी उनका सहारा न था।

एकाएक उनकी गतिमें बाधा पड़ी। उन्हें सामने ही जमीन पर कुछ पडा मालूम हुआ। साथ ही बालकोंकी रोदन-ध्वनि भी सुन पड़ी। दोनों दौड़ पड़े। एकने आगे बढ़कर उन बच्चोंको उठा लिया। पुचकार शान्त करने लगा। मालूम होता है, दोनों अपनी विपत्ति अच्छी तरह समझ रहे थे। उस मनुष्यके पुचकारते ही इस तरह शान्त हो गये मानों बहुत दिनोंका कोई परिचित उन्हें मिल गया हो।

इसी समय दूसरेने अपनी चोर लाल्टेन निकालकर जलायी। अब सबको स्पष्ट मालूम हुआ, कि यहाँ एक भयंकर घटना घटी है। उन्होंने देखा, कि वल्लभदास और वह जमादार खूनसे लथपथ पडे हैं। अब क्या किया जाय? इनमेंसे जो उन लड़कोंको उठाये हुए था बोला—"यहाँ तो अनर्थ हो गया है। ये दुष्ट यहाँ तक कर गुजरेंगे, इसकी मुझे खबर न थी। अफसोस है, कि आनेमें देर हो गयी, अब क्या किया जाय।"

दूसरा बोला—"पर यहाँ तो किसीका सहारा भी नहीं है। न कोई गाड़ी घोड़ा ही। तुम यह ध्यान रक्खो कि किसी गाडीके नीचे ये कुचल न जायें। मैं महालक्ष्मीके पाससे गाड़ी बुला लाता हूँ।"

पर दूसरा बोला—"ठहरो, पहले इनको रास्तेसे हटा दो अफ़सोस है, कि पासमें कहीं पानीका ठिकाना भी नहीं है, कि इनकी पट्टी बाँध दूँ।"

दोनोंने पकड़कर पहले वल्लभदास और फिर उस जमादारको उठाकर सड़कके एक किनारे घासपर सुला दिया। इसी समय किसी आती हुई गाड़ी की घड़घड़ आवाज़ उनके कानोंमें पड़ी।

दोनों ही चौंक पड़े। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने देखा कि किरायेकी एक गाड़ी घड़ घड़ करती हुई उसी स्थानपर आकर खड़ी हो गयी।

इसके बाद वही कोचवान गाड़ीसे नीचे कूद पड़ा। इसी समय पहले वाले दोनों मनुष्य उस गाड़ीवालेके पास जाकर खड़े हो गये। वह इन्हें देखते ही घबड़ा उठा। बोला—"यहाँ जो दो आदमी जख्मी होगये थे, वे कहाँ चले गये।"

अब मालूम हुआ कि यही वह कोचवान था, जिसकी गाड़ीपर वल्लभदास आये थे। अतएव, उन दोनोंमें से एकने आगे बढ़ कर उससे सब समाचार पूछे। उसने आद्योपान्त सब समाचार सुनाकर कहा—"भगवानकी दयासे मुझे चोट ज्यादा नहीं आयी थी, इसीलिये भागकर एक जगह जा छिपा। और सब लीलाएँ देखता रहा। इसके बाद, जब वे गाड़ीपर बच्चेकी माँको लेकर भागे, उस समय भी मैंने पीछा किया पर उन्हें पा न सका। थोड़ी ही दूर आगे एक पेड़के नीचे मेरी यह गाड़ी छोड़, वे एक मोटर गाड़ीपर चढ़ाकर उसे ले भागे। कहाँ ले गये, मैं नहीं बता सकता। अब यह गाड़ी लेकर मैं लौट आया हूँ, कि इन्हे अस्पताल पहुँचा दूँ।"

सबने मिलकर दोनों आहतोंको गाड़ीमें लादा और लेकर अस्पताल पहुँचे। उन्हे अस्पतालमें भर्त्ती कर दिया गया।

इसी समय उनमेंसे एक बोल उठा—"पर रामू! इन बच्चोंका क्या होगा।"

अब पाठक समझ गये होंगे कि वल्लभदासके पीछे छायाकी तरह घूमनेवाला यह रामू ही था और दूसरा उसका एक साथी जिसका असली नाम चाहे जो भी हो, इस समय उसे लोग मानिकलाल ही कहते थे।

मानिकलालके प्रश्नको ही इस समय रामू सोच रहा था। वह सोच रहा था, कि वल्लभदासके घरमें इस समय ऐसा कोई भी नहीं है, जो उनका घर सम्हाल सके और लड़कोंको देख सके। वह बहुत चिन्तामें जा पड़ा। अतएव, रामू दोनों बच्चोंको साथ लिये अपने निवास स्थानपर चला गया। उस समय उन दोनोंको कुछ खिला पिलाकर उसने सुला दिया। इसके बाद, वह फिर लौटकर अस्पतालमें गया। अब तक वल्लभदास बेहोश अवस्थामें ही पड़े थे। रामू किंकर्तव्यविमूढ हो वहीं बैठा रहा। उसका साथी चला गया। परन्तु फिर भी उसका जी न माना। वहाँसे उठकर वह फिर अपने मकानपर गया। दोनों बच्चोंको देखा। वे शान्तिसे सो रहे थे। अब वह अपना कर्त्तव्य सोचने लगा।

इस समय रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी, पर रामूको चैन नहीं था। वह घूमता फिरता वल्लभदासके मकानकी ओर चला गया। मकानका फाटक अब तक खुला पड़ा था, उसने देखा कि उनका दूसरा जमादार सामने ही पड़ा हुआ है।

रामूके मनमें खटका हुआ। यह क्या माजरा है। उसने जमा-

दारको पकड़कर हिलाया, पर यह क्या, वह तो निर्जीवकी तरह पड़ा था। रामूके बहुत जगाने पर भी न जागा। अब रामू उसे वहीं छोड़, मकानके भीतर घुस गया। उसने देखा आल्मारीका ताला टूटा पड़ा है, चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं और सभी बहुमूल्य और कीमती सामान गायब हैं।

समझ गया—शत्रुओंकी यह भी चाल है। एक साथ ही उन्होंने दो पक्षियोंका शिकार किया है। अतएव, चुपचाप वहाँसे लौटकर अपने घर चला गया। वल्लभदासकी इस दुरवस्था पर वह अधीर हो उठा और सोचने लगा, कि अब क्या करना चाहिये। पुलिसमें समाचार देनेसे वह घबराता था, न जाने क्या हो और सुशीलाका पता लगानेके लिये भी व्याकुल हो रहा था।

देखते देखते रात बीत गयी, सवेरा हुआ, परन्तु रामूको चैन नहीं था। वह बार बार दोनों बच्चोंको जाकर देखता। सवेरा होते ही वह एक स्त्रीको जाकर बुला लाया। दोनों लड़कोंकी देख-रेखका भार उसपर सौंप अस्पताल गया। वहाँ मालूम हुआ, कि वल्लभ-दास कुछ अच्छे हैं, अब उनके जीवनका भय नहीं है।

अभी वह अस्पतालसे निकला ही था, कि मानिकलाल आ पहुँचा। बोला—"बड़ी भयकर खबर है। तुम वल्लभदासकी मदद कर रहे हो, यह शत्रुओंको मालूम हो गया है। वे तुम्हारी ताकमें हैं।'

रामूने कहा "हूँ।" इसके बाद कुछ सोचकर बोला—"मेरा वे क्या बिगाड़ लेंगे।"

मानिकलालने कहा—"जानते हो, शत्रु बड़ा जबर्दस्त है।"

रामू बोला—"पर परमात्मा उससे भी जबर्दस्त है। तुम अपना काम करो। अब मुझसे विशेष मिलनेकी भी जरूरत नहीं है।"

मानिकलाल उठकर चला गया। उसके जाते ही रामू थानेमें जा पहुँचा। वहाँ जाकर दारोगाको कलकी सारी वारदातकी रिपोर्ट लिखाई, केवल उन बच्चोंका जिक्र नहीं किया। गाड़ीवालेका गाड़ीका नम्बर और मकानका पता भी लिखवा दिया। इसके बाद यह कह कर कि दोनों घायल अस्पतालमें हैं, आप वहाँसे चला आया। जाते समय अपना नाम रामचन्द्र लिखवा गया।

इतना काम कर रामू वहाँसे लौटकर अपने घर गया। देखा दोनों बच्चे बड़े आनन्दसे हैं। वह स्त्री उन्हे बैठाकर खिला रही है।

घर जाते ही उसने रामूको एक चिट्ठी दी। रामूने खोलकर देखा—इतना ही लिखा था—"तुम्हारी कोई भी कार्रवाई मुझसे छिपी नहीं है, अपना भला चाहो, तो इस झमेलेसे अलग रहो।"

रामू फिर चिन्तामें जा पड़ा। थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहनेके बाद बोला—"अब इस घरको भी त्यागना होगा। शत्रुओंको मालूम है। इनकी जान तो बचानी ही होगी।"

दिनभर रामू इधर उधर पता लगाता रहा, पर सुशीलाका पता किसी तरह न लगा। संध्याके समय मानिकलाल आ पहुँचा। बोला—"कुछ पता नहीं लगता। इसमें सन्देह नहीं कि यह काम राधारमणका है, परन्तु इस बार वह भी तो यहीं डटा है। दिन भर घरमें ही था। मैंने कई बार उसकी खबर ली है।"

रामूने कुछ सोचकर कहा—"फिर!"

मानिकलालने कहा—"यह तो निश्चित है, कि अभी सुशीलाको ये कष्ट न देंगे, बल्कि रखेंगे आरामसे ही। इसके बाद देखा जायगा।"

रामू बोला—"पर मेरी तो अब इस मकानमें गुज़र नहीं है।" इतना कह, उसने मानिकलालके हाथमें वह पत्र दे दिया।

मानिकलाल बोला—"मैंने तो पहले ही तुमसे कह दिया था।"

इसके बाद, दोनोंमें कुछ देरतक बातें होती रहीं। मानिकलाल उठकर चला गया। रामू आज घरसे बाहर न निकला। सध्याके समय, जब अन्धकार घना हो गया था, तब रामू दोनों बच्चोंको गोदमें ले, कोलाबा स्टेशनपर जा पहुँचा और वहाँसे रेलगाड़ीमें सवार हो एक ओरको चला गया।

रातके अन्दाजन नौ बजे होंगे, कि रामू गाड़ीसे एक छोटेसे स्टेशनपर उतरा। यह एक छोटा-सा गाँव था। मालूम होता है, रामू इस गाँवसे भली-भाँति परिचित था। उसने दोनों बच्चोंको कन्धे-पर बैठाया और तेजीसे गाँवकी ओर जाने लगा। एकाएक एक मिट्टीके मकानके दरवाजेपर जाकर वह खड़ा हो गया। दरवाजा भीतरसे बन्द था। रामूने पुकारा—"मौसी!"

भीतरसे किसीने पूछा—"कौन?"

रामूने अपना परिचय बताकर कहा—"दरवाजा खोलो।"

तुरन्त ही एक वृद्धा लकड़ी टेकती दरवाजा खोलकर बाहर निकली। रामूकी गोदमें दो सुन्दर बच्चोंको देखकर बोली—"ये क्या तेरे बच्चे हैं, रामू?"

इस बातका उत्तर न देकर रामूने कहा—"भैया कहाँ हैं ?"

वृद्धाने जगमोहन, जगमोहन कर कई आवाजें लगायीं। तुरन्त ही एक मोटा-ताजा हृष्ट-पुष्ट युवक आ पहुँचा। रामूको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। बोला—"तुम तो कभी आते ही नहीं। हमलोग सब तुम्हारी चिन्तामें रहते हैं। आज कैसे आ पहुँचे।"

रामूने आद्योपान्त सारी घटनाएँ कह सुनायीं। कहकर बोला—"तुम तो जानते ही हो कि बीस बरस हुए घरवाली चल बसी। तबसे मालिकके घरको ही अपना घर समझा। यद्यपि मालिकने जवाब दे दिया है, परन्तु उस घरकी माया नहीं छूटती और न जिन्दगी भर छूटेगी। ये मेरे मालकिनके बच्चे हैं। जब तक मालकिनको न खोज निकालूँ, तब तक इनकी रक्षा करनेका भार तुमलोगोंपर है। इन्हें कोई कष्ट न हो।" इतना कह उसने पचास रुपये निकालकर जगमोहनके हाथमें दे दिये। बोला—"इनके बिना मुझे कल नहीं पड़ेगी, परन्तु यहीं कुछ दिन इन्हें तुमको रखना पडेगा। अच्छा, अब मैं जाता हूँ। इनका कपड़ा-लत्ता, ओढना-बिछौना सबका प्रबन्ध कर देना।"

जगमोहनने अपनी स्त्री को पुकारा। गाँवकी बहू, सकुचाती हुई बाहर आयी। रामूको देखकर उनके पैर छूए। वह तो किवाड़की ओटसे सब सुन ही रही थी, उसने तुरन्त दोनों बच्चोंको गोदमें उठाया और भीतर जाने लगी। इस समय एकाएक रामूकी आँखोंमें आँसू भर आये। रोनी आवाजमें मौसीकी ओर देखकर बोला—

"इन्हें अपनी जानसे बढ़कर रखना। बिचारोंके कभी जमीन पर पैर नहीं पड़ते थे। भगवानकी मर्जी।"

इतना कह रामूने अपनी आँखें पोंछ डालीं। फिर बोला—"मैं अभी चला जाऊँगा।"

जगमोहन और उसकी माँने बहुत रोका, पर रामू न रुका। वह उसी समय उठ खड़ा हुआ। बोला—"ग्यारह बजे गाड़ी मिल जायगी। अब समय नहीं है, पर इतना हमेशा याद रखना कि बच्चोंको कोई कष्ट न हो?"

यह एक पहाड़ी गाँव था। आबहवा बहुत अच्छी थी, साथ ही जगमोहन आदि सहृदय थे। जगमोहन भी साथ ही चला। स्टेशन तक पहुँचाने आया। इसके बाद जब गाड़ी खुलने लगी तो रामूने उसे फिर बच्चोंकी ओरसे सावधान कर आँखें पोंछीं।

गाड़ी खुल गयी, पर जगमोहन अपने इस स्वामिभक्त भाईकी बात खयाल करता वहाँ कुछ देर खड़ा ही रह गया।

सोलहवाँ परिच्छेद

दुरभिसन्धि
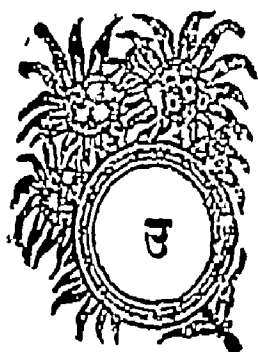
स समय सवेरा हो गया था, जब सुशीलाको वेहोशी दूर हुई। उसने अकचकाकर अपने चारों ओर देखा। वह इस समय कहाँ है—उसने देखा, वह एक वहुत सजे-सजाये कमरे-में एक वहुमूल्य पलगपर सोयी हुई है। कमरा भी खूव ठाट-वाटका है, देवी देवताओंके चित्रके वदले दीवारों पर, नग्न अर्द्ध-नग्न स्त्रियोंकी हाव-भावपूर्ण तस्वीरें लगी हैं। कितनी ही प्रकारकी रमणी-मूर्त्तियाँ उस कमरेकी शोभा वढ़ा रही हैं। सुशीलाने समझा-वह कोई स्वप्न देख रही है, परन्तु वह वास्तवमें स्वप्न नहीं, वल्कि प्रत्यक्ष पदार्थ देख रही है, यह उसे तव मालूम हुआ, जव उसने उठनेकी चेष्टाकी। परन्तु वह उठ नहीं सकी। उठनेके लिये जोर लगाते ही उसकी पीठमें इस जोरका दर्द हुआ कि वह चीखकर फिर लेट गयी। इसी समय एक प्रौढ़ाने उस कमरेमें प्रवेश किया।

सुशीलाने पड़े पड़े ही देखा—प्रौढ़ा उसकी ओर ही आ रही है। यह देख उसने आँखें वन्द कर लीं।

उस प्रौढ़ाने उसके पास पहुँचकर कहा—"क्या हुआ रानी?"

सुशीलाने अपनी बन्द आँखें खोल दीं, बोली—"मैं कहाँ हूँ ?"

प्रौढ़ाने कहा—"तुम इस समय एक सुसज्जित बागमें हो। यह एक धनी आदमीका बागीचा है ?"

सुशीलाको पूर्व स्मृति उदय हो आयी। बोली—"मुझे यहाँ कौन ले आया ?"

प्रौढ़ाने कहा—"यह मैं क्या जानूँ रानी ! मुझे तुम्हारी सेवा करनेकी आज्ञा है, सो कर रही हूँ। तीन दिनोंसे रात रात भर तुम्हारी चोटकी जगह मली है, मरहम पट्टीकी है।"

सुशीला मन ही मन सोचने लगी। मैं मर क्यों न गयी ? मेरा मर जाना ही तो अच्छा था। यदि कुछ दिन पहले ही मर गयी होती तो उनपर विपत्ति तो न आती, उनकी यह दुर्दशा नहीं होती। यह सब मेरे ही कारण हो रहा है। इतना सोचते सोचते उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। मन व्याकुल हो उठा।

प्रौढ़ा बोली—"रोती क्यों हो रानी ! ऐसा सजा सजाया कमरा, यह ठाट-बाट, यह सब किसके लिये किया गया है ? तुम्हारे लिये ही न, फिर तुम क्यों रोती हो ? यह तो हंसनेकी बात है—आनन्द मनानेकी।"

सुशीला समझ गयी, कि यह काम किसका है, पर प्रत्यक्षमें बोली—"तो साफ क्यों नहीं बतातीं कि यह ठाट किसने रचा है ? "अच्छा, तुम्हे बाल-बच्चे हैं ?"

प्रौढ़ाने कहा—"भगवानकी दयासे मैं बिलकुल अकेली हूँ। ऐसा कोई भी नहीं है, जिसके लिये रोऊँ।"

इतना कह, उस प्रौढ़ाने ऐसा मुँह और हाव-भाव बनाया, कि इस दुरवस्थामें भी सुशीलाको हँसी आ गयी। उसे हँसते देख प्रौढ़ा बोली—"अभी जवानी है, हँसनेके ही दिन हैं। क्यों न हँसोगी रानी! कुछ दिनमें तुम्हीं तो इस राज्यकी मालकिन बनोगी।"

सुशीला अपनी विपत्ति खूब अनुभव कर रही थी, परन्तु साथ ही उसे अपने सत्यबलका बड़ा भरोसा था। सोचती अब तो आ फंसी हूँ, चेष्टाकर देखूँ, शायद निकल भाग सकूँ। नहीं तो मृत्यु तो है ही।

बोली—"अच्छा, किसकी आज्ञासे तुमने मेरी सेवा की।"

प्रौढ़ा बोली—"देखो मेरा नाम मोती है। आजसे जब जरूरत पडे तब मुझे मोती कहकर बुलाना और कुछ बतानेका मुझे हुक्म नहीं है।"

सुशीलाने कहा—"बतानेका हुक्म नहीं है। जब तुम मेरे लाने-वालेका नाम ही नहीं बताना चाहतीं, तब मैं कैसे समझूँ कि मेरी कैसी खातिर होगी।"

प्रौढ़ा तीव्र दृष्टिसे उसकी ओर देखती हुई बोली—"अभी तुम निरी बच्ची हो। तुम्हारे जैसी बहुत-सी स्त्रियाँ मैंने देखी हैं। मैं यह सब नहीं जानती। जो लाया है, उससे पूछना।"

सुशीलाने कहा—"नाराज न हो। देखो मैं बाल बच्चेवाली हूँ। मेरे बिना दोनों बच्चे बिलख रहे होंगे। मेरे पति न जाने कहाँ-कहाँ मुझे ढूँढते फिरते होंगे। तुम दयाकर मुझे यहाँसे निकाल दो, जिन्दगी भर गुण गाऊँगी। नहीं तो मेरे बच्चे मर जायँगे।"

प्रौढ़ाने लम्बी-सी जीभ निकालकर कहा—"ऐसी बात जबान पर न लाना और जिनका यह भरोसा है कि तुम्हें खोजते फिरते होंगे और पता लगाकर छुड़ा ले जायँगे। उनका भरोसा त्यागो। वे अस्पतालमें पड़े-पड़े अपने भाग्यको भीखते होंगे। रही बच्चोंकी बात—सो यदि तुम यहाँ आनन्दसे रहना चाहोगी तो वे तुम्हारे पास आ जायँगे।"

सुनते ही सुशीलाने कपाल ठोंक लिया। ओह! तब क्या वल्लभदास भी घायल हो गये हैं, क्या वे अस्पतालमें पड़े हैं। सुशीला चंचल हो उठी। घबड़ाकर उठ बैठी। इस समय अपनी चोट, अपनी यातना वह भूल गयी, उसने पलँगसे उतरकर मोतीके पैर पकड़ लिये। बोली—"तुम मेरी माताके समान हो। ठीक बताओ क्या वे सचमुच घायल हो गये हैं? अब कैसे है। अस्पतालमें उनकी कैसी दशा है। तुम मुझे छोड़ दो। नहीं तो मेरे बिना उनका प्राण न बचेगा, मै तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

प्रौढ़ा मोतीने झटककर अपने पैर खींच लिये। झिझककर पीछे हट गयी। बोली—"यह क्या करती हो? मैं छोड़नेवाली कौन हूँ?"

सुशीलाने रोते हुए कहा—"तो यही बता दो कि मुझे इस तरह पकड़कर यहाँ लानेवाला कौन है?"

"मैं हूँ, सुशीला, तेरे बिना क्षण भरके लिये भी मैं जी नहीं सकता। इसीलिये, तो पापोंका इतना भार अपने सरपर लाद, तुझे उठा लाया हूँ।" कहता हुआ राधारमण उस बँगलेके भीतर आ पहुँचा।

सुशीला जमीनमें बैठी हुई थी, अब उठ खड़ी हुई। मोती वहाँ-

से खिसक गयी। सुशीलाने इसके बाद गम्भीर स्वरमें कहा—"मैं भी ऐसा ही समझती थी।"

"तुम जरूर समझती होगी, सुशीला! और समझकर भी तुम बे-समझ बनी रहीं, शायद इसीका यह परिणाम हुआ कि अपनी सम्पत्ति गँवा बैठीं और अपना सारा सुख जहन्नुममें मिला दिया।" कहता हुआ राधारमण सुशीलाकी ओर उसी तरह देखने लगा, जिस तरह जालमें फँसी हुई हरिनीकी ओर व्याधा देखता है।

सुशीलाने अपनेको सम्हाला। समझ गयी कि बड़े विकट मनुष्यसे पाला पड़ा है। अब उसकी अग्नि-परीक्षाका समय आ गया है। साहस बाँधकर बोली—"राधारमण बाबू! तो क्या आप अब मुझे कैदकर रखेंगे?"

राधारमणने कहा—"इसका उत्तर तो स्वय तुम ही समझ सकती हो। अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है, यदि अब भी तुम मेरी आज्ञा न मानोगी, तो जो न करनेका है, वह भी करूँगा।"

सुशीलाने कहा—"मेरी धारणा कुछ दूसरी है। मैं समझती हूँ कि आप मनुष्य हैं। मनुष्य कभी पशु नहीं हो सकता। किसी पापके फल-स्वरूप यदि कुछ दिनोंके लिये पशुकी खाल ओढ़ भी ले तो उसे उतार सकता है। आप भी आखिर परिवारवाले हैं, आपसे यह अत्याचार कैसे बना?"

राधारमण बोला—"सुशीला! तर्कका समय नहीं है। तुम्हारा उपदेश मैं नहीं सुनना चाहता, मैं तुम्हें चाहता हूँ। चाहता हूँ, तुम्हारा रूप और यौवन।"

सुशीलाने दृढ़तासे कहा—"जूठी चीजें तो कुत्ते खाते हैं, राधा-रमण बाबू ! आप ये कैसी बातें कह रहे हैं ? आप मेरे पतिके मित्र हैं, और मैं उनकी स्त्री । क्या आपको यह प्रस्ताव शोभा देता है । याद रखिये, मैं उसी दिनवाली सुशीला हूँ ।"

राधारमण बोला—"इन बातोंसे काम न चलेगा। तुम यदि सीधी तरहसे न मानोगी तो मुझे अत्याचार करना पड़ेगा।"

सुशीला बोली—"अत्याचारमें बाकी ही क्या है । झूठ, फरेब, दगा, दंगा सभी तो हो चुका। पतिदेव घायल होकर अस्पतालमें पड़े हैं । बच्चे न जाने कहाँ बिलखते रोते मारे फिरते होंगे। अब और क्या बाकी है । अब और भी जो बाकी हो, पूरा कर लीजिये । पर यह भी समझ रखिये कि सतीकी आह वंशका नाश कर देती है।"

राधारमणने कहा—"अभी तो कुछ नहीं हुआ है यदि अब भी तुम न मानोगी तो तुम्हारे पतिकी और भी दुर्दशा करा दूँगा और तुम्हारे सामने तुम्हारे बच्चोंकी हत्या । ।

सुशीला अब सुन न सकी। उसका सर भन्ना उठा। एकाएक उसका मस्तिष्क विकृत हो उठा। उसने उसी जगह टेबलपर रखा हुआ एक बड़ा सा पीतलका गमला उठाकर जोरसे राधारमणकी ओर यह कहकर फेंका "ले कर बच्चों की हत्या" उन्मादिनीका क्रोधमें फेंका हुआ गमला राधारमणकी खोपड़ीमें जोरसे लगा और वह एक बार आह कर सर थाम उसी जगह बैठ गया और सुशीला, वह सामने जो चीज थी सबको धक्के देती, गिराती उस कमरेसे बाहरकी ओर भागी। भीतर धड़ फड़की आवाज सुन

मोती आ गयी थी। दरवाजे पर ही सुशीलाको मिली। सुशीलाने उसे भी एक जोरका धक्का दिया। स्थूलकाय मोती लुढ़क कर एक ओर जा गिरी। सुशीला वहाँसे भागी, पर तुरन्त ही राधारमण वाहर निकलकर जोरसे चिल्ला उठा—"इसे पकड़ो।"

इस समय भी उसकी खोपड़ीसे रक्तकी धारा बह रही थी। चेहरा लाल हो रहा था, जिसके भीतरसे उसकी चमकीली आँखें और भी भयावनी दिखाई देती थीं। उसने गरज कर फिर कहा—"इस राक्षसीको पकडो, देखो भागने न पाये।"

चारों ओरसे यमदूतकी तरह राधारमणके जमादार दौड़ पड़े। उन बलिष्ठ जमादारोंसे सुशीला किसी तरह बच न सकी। थोड़ी ही देरकी दौड धूपके वाद पकड़ ली गयी। इस समय उसकी उत्तेजना वहुत वढ गयी थी। होश-हवास न थे। वह अत्यन्त प्रचण्ड हो गयी थी। जमादारोंके पकड़ते ही, वह उत्तेजनाके कारण वेहोश होकर गिर पड़ी। राधारमणकी आज्ञासे जमादारोंने उसके हाथ पैर वाँध दिये। इसके बाद उसे उठाकर ले जाना ही चाहते थे कि एका-एक हीरालाल वहाँ आ पहुँचा।

यद्यपि हीरालाल राधारमणका मित्र था, पर न जाने क्यों अपना यह दुराचार राधारमण हीरालालसे छिपाना चाहता था। अतः हीरालालको देखते ही बोल उठा—"तुम कैसे आ गये हीरालाल?"

हीरालालने मुसकुराते हुए कहा—"देखने आया हूँ कि तुम अपने शिकारका क़बाव किस तरह बनाते हो। पर यह क्या हुआ?

तुम्हारे माथेसे यह खूनकी धारा! यह किस पापका प्रायश्चित्त है?"

राधारमण क्रोधसे उन्मत्त हो रहा था। बोला—"इस प्रायश्चित्तका जिस समय बदला लूँगा, उस समय पृथ्वी काँप उठेगी और तुमलोग भी देखोगे कि राधारमणमें कितनी शक्ति है।"

हीरालालने पास जाकर अपनी चादरसे खून पोछा। बोला—"इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हो? क्या हुआ?"

राधारमण बोला—"होगा क्या, इसी चाण्डालिनीने गमला फेंक मारा।"

हीरालाल बोला—"किसने, सुशीलाने? पर वह तो तुम्हारी प्रेमिका है। उसके अपराध पर मर्द होकर क्यों इतने उत्तेजित होते हो?"

राधारमण बोला—"हीरालाल तुम्हें मित्र कह चुका हूँ, पर इस समय न बोलो। मेरे कार्यमें बाधा न दो।"

इतना कह, राधारमण उसी स्थानपर चला गया, जहाँ हाथ-पैर बँधी, बागकी रविशपर सुशीला बेसुध पड़ी थी। उसके पास ही राधारमणके तीन बलिष्ठ जमादार खड़े थे।

न जाने क्यों, इस समय हीरालालकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने सबकी दृष्टि बचा, आँसू पोंछे और इसके बाद उसी स्थानपर आकर खड़ा हो गया, जहाँ सुशीला थी।

राधारमणने इसी समय बिगड़कर कहा—"इसे सुखमें रखा था, इसीलिये, यह अवस्था हुई। ले जाओ, इसे उस अँधेरे तहखानेमें कैद कर दो।"

हीरालालने फिर समझाया। बोला—'धीरजसे काम लो। स्त्री-जाति अत्याचारसे नहीं, प्रेमसे वशमें आती है।' पर राधा-रमणने न माना। जमादारोंको उठा ले जानेका आदेश दिया।

दुर्दान्त जमादार उसे उठाकर एक अँधेरी कोठरीमें कैद कर आये। उसे बिना हाथ पैर खोले, उसी अवस्थामें जमीनपर डाल दिया। इसके बाद दाँत पीसता हुआ, राधारमण बोला—"देखूँ, अब कौन मुझे बाधा प्रदान करता है। इस खूनका बदला खूनसे लूँगा। सुशीलाके सामने ही उसके पुत्रोंकी हत्या करूँगा और तब पूछूँगा अब बता, तेरा सत्य और सतीत्व कहाँ है ?"

इतना कह राधारमण क्रोधसे गरजता हुआ इधर उधर टहलने लगा। कुछ देर बाद—अपने एक जमादारको बुलाकर बोला—'तुमने बड़ी भूलकी, जो उन दोनों बच्चोंको न लेते आये। जाओ, तुम तीन मनुष्य अभी जाओ और जिस तरह हो, उन बच्चोंको सन्ध्यातक यहाँ हाजिर करो।"

जमादार सब राधारमणकी प्रकृतिसे अच्छी तरह परिचित थे। वे "जो आज्ञा" कहकर तुरन्त वहाँसे चले गये। अब हीरालालकी ओर देखकर राधारमणने कहा—"कलेजा तो नहीं काँपता है। यह दानवी लीला देख सकोगे ?"

इस समय हीरालालका चेहरा उतर गया था। वह अब तक नहीं समझ सका था, कि राधारमण इस धातुका बना है। उसने कहा—"तुम बड़े कठोर हृदयी हो।"

राधारमण बोला—"आज ही सत्य और असत्यके बलकी

परीक्षा होगी। मैं देखना चाहता हूँ, कि सुशीलाको आज कौन बचाता है। सत्य जयी होता है, या धन।"

हीरालालने कहा—"यह सब अच्छा नहीं है, राधारमण! तुम इन झमेलोंमें न पड़ो, न जाने इसका परिणाम कैसा हो?"

राधारमण बोला—"परिणाम! तुम अपनी आँखों देखना।"

इतना कह, वह गौरसे हीरालालका चेहरा देखने लगा। इस समय हीरालाल सर झुकाये कुछ सोच रहा था। राधारमणको कुछ सन्देह हुआ। उसने हीरालालसे कहा—"क्या सोच रहे हो, हीरालाल!"

हीरालाल बोला—"कुछ नहीं। पर मै तुम्हारा मित्र हूँ। मेरा कहना मानो। इन प्रपंचोंको छोड़ो। क्यो जान बूझकर आगमें हाथ डालते हो?"

राधारमण ठठाकर हँस पड़ा। बोला—"अब तुम्हारे उपदेशोंका कोई फल नहीं है और इन बातोंकी खबर भी कभी किसीको नहीं हो सकती। तुम अच्छी तरह जानते हो कि यह बाग शहरके बाहर बहुत दूर है। यहाँ किसीका आवागमन हो नहीं सकता। फिर कौन जानता है कि सुशीला यहाँ है? अच्छा मेरे साथ चलो।"

हीरालाल उठ खड़ा हुआ। राधारमणने कहा—"चलो, आज तुम्हे अपना गुप्त गृह दिखाऊँ।"

दोनों ही उस बागके एक एकान्त भागमें जा पहुँचे। इधर एक छोटी सी इमारत बनी हुई थी। इसीमे दोनों घुसे। नीचे तहखाना बना हुआ था। सीढ़ीके सहारे दोनों ही नीचे उतर गये। अब इस

तहखानेमें बनी कोठरियाँ राधारमणने हीरालालको दिखानी शुरू कीं। इनमेंसे ही एक कोठरीमें इस समय सुशीला कैद थी।

एकाएक एक कोठरी खोलकर दिखाते हुए राधारमणने हीरा-लालको भीतर ढकेल दिया। हीरालाल इस समय बिलकुल ही असावधान हो रहा था। अतएव वह भीतर जा गिरा। राधारमणने बाहरसे दरवाजा बन्दकर साँकल चढ़ा दी। हीरालाल भीतरसे चिल्ला उठा—"यह क्या राधारमण!"

राधारमणने कहा—"तुम बहुत दुर्बल हृदय हो। शायद बात फूट जाये और मेरा उद्देश्य सिद्ध न हो। इसलिये रात बारह बजे तकके लिये तुम्हें रोक रखा है। काम समाप्त हो जानेपर छोड़ दूँगा।"

हीरालालने बहुत आरज़ू-मिन्नतें कीं, पर राधारमणने एक न सुनी। साँकल चढाकर बाहर चला आया। इसके बाद अपने विश्राम गृहमें आकर लेट गया और मन ही मन नाना प्रकारके बाँधनू बाँधने लगा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

निर्धनके धन राम

ज अमावस्या रहनेके कारण सब ओर उसी तरह अंधकार छाया है जिस तरह पापियों के हृदयमें अँधेरा छाया रहता है। संध्यासे पहले ही राधारमणके जमादारोंने आकर समाचार दे दिया, कि उन बच्चोंका कहीं पता नहीं लगता, वल्लभदासके घरमें चोरी हो गयी है, मालमता सब कुछ कोई ले गया है, वल्लभदास उसी तरह अस्पतालमें पड़े हुए है। सुनकर राधारमणने कहा—"बहुत ठीक हुआ है। परन्तु उन बच्चोंको कौन ले गया?"

जमादारोंमें से एक बोला—"कुछ पता नहीं है। वल्लभदासके घरमें बाहरसे ताला बन्द है। अस्पतालमें इधर उधर बहुत खोजा, पता लगाया परन्तु पता नहीं लगता।"

राधारमण "हूँ" कहकर कुछ सोचने लगा। इस समय रातके आठ बज गये होंगे, राधारमण अपना श्रृंगार करने लगा। उसने अपनेको खूब सजाया। इसके बाद उसने आलमारी खोल शराबकी बोतल निकाली। जी भर खूब पीता और मन-ही-मन कुछ बड़-बड़ाता रहा। देखते देखते रातके ग्यारह बज गये। अब राधारमण-ने आल्मारी खोल एक छुरा निकाला। छुरा अपने वस्त्रोंमें छिपा

हाथमें एक हण्टर ले एक अद्भुत ठाट-बाटसे राधारमण बागके उसी एकान्त भागमें जानेके लिये तैयार होने लगा।

इधर राधारमण सुशीला दर्प-दलनकी ये तैयारियाँ कर रहा था, उधर बागके उस एकान्त भागमें कुछ दूसरी ही घटना घटी। एक बहुत ही मोटा-ताजा जवान काले कम्मलोंमें अपनेको छिपाये, उस एकान्त इमारतमें जा पहुँचा। जानेके साथ ही उसने हीरालालकी कोठरीकी साँकल खोल दी। खोलकर हीरालालको निकाला। इसके बाद उसने दियासलाई जलाकर हीरालालको अपना चेहरा दिखाया। हीरालाल चौंक पड़ा। बोला—"है तुम! अब क्या मेरी जान लिया चाहते हो?"

उसने धीमे स्वरमें कहा—"आप धोखेमें हैं। ओछेकी प्रीति ऐसी ही होती है। इनके साथकी वजहसे ही आप मुसीबतमें फँसे हैं। हमलोग पहलवान हैं, मर्द हैं, औरत पर हाथ नहीं उठाते, माई पर अत्याचार नहीं देख सकते। रुपया ही साथ न जायगा। मूर्ख हैं, पर इतना समझते हैं। आज सवेरे जबसे माईकी दुर्दशा देखी है, मुँहमें दाना पानी नहीं डाला है। बस भाग जाइये, अब देर न कीजिये।"

हीरालालने कहा—"और सुशीला?"

वह बोला—"माईको भी छुड़ाऊँगा।"

हीरालाल बोला—"और तुम?"

वह बोला—"मेरी फिक्र छोड़ो। मेरा ये कुछ नहीं बिगाड़

सकेंगे। एक लाठीमें सबको चूर कर दूँगा। पर अभी न जाऊँगा। देखूँ, फिर क्या होता है।"

इसके बाद उसने भीतर जाकर सुशीलाके बन्धन काटे। बोला— "मेरे साथ चलो, माता।"

सुशीलाको साथ लेकर हीरालाल और वह तीनों ही कम्मलसे अपनेको छिपाये। बागके पिछले दरवाजे पर पहुँचे। उसी आदमीने ताला खोला। इसके बाद सुशीला और हीरालालको बाहर निकाला। सुशीलाके पैर छूकर बोला—"माई भाग जाओ यहाँसे, शहर छोड़ कर भाग जाओ। तुम्हारे घरमें कोई नहीं है। तुम्हारे मालिक अस्पतालमें हैं, पर वहाँ न जाना, फिर पकड़ जाओगी। सीधे यहाँ से रेलपर चढ़कर कहीं भाग जाओ।" इतना कह उसने पाँच रुपये सुशीलाके पैरपर रखकर कहा—"अपने बेटेका धन लेनेमें सकोच न करो।' फिर हीरालालको कुछ समझाया और दरवाजा ज्यों का त्यों बन्दकर भीतर चला गया।

अब भी राधारमण बैठा शराब पी रहा था और घड़ीमें बारह बजने की राह देख रहा था।

सुशीला भागी, हीरालाल भी साथ था। इसके बाद दोनोंने कम्मल उतारकर फेंक दिये। बहुत दूर जानेके बाद शहरकी रोशनी मिली। उस रोशनीमें अपने साथी हीरालालका चेहरा देखकर सुशीला चौंक पड़ी। यह तो वही है।

हीरालाल सुशीलाका भाव समझ गया। बोला—"डरो मत, मैं तुमसे जरूर स्नेह करता हूँ। उसी दिनसे तुम्हारी भक्ति करता

हूँ, जिस दिन राधारमणने तुम्हारा चित्र दिखाया था। पर वैसा ही स्नेह करता हूँ, जैसा पुत्र अपनी मातासे और भाई अपने बहनसे करता है। तुम मेरी बहन हो, भाई पर अविश्वास न करो। तुम्हारी रक्षाके लिये राधारमणका साथ किये बैठा हूँ। मानो, क्षण भर भी विलम्ब न करो।" यह कह उसने सुशीलाके पैर पकड़ लिये। बोला—"तुम नहीं भागोगी तो हम दोनों ही पकड़े जायँगे।"

लाचार भाग्य पर भरोसा कर सुशीला मान गयी। दोनों ही तेजीसे भागे। राहमें एक किरायेकी गाड़ी मिल गयी। उस पर सवार हो दोनों स्टेशन जा पहुँचे। रेलगाड़ीमें जा चढ़े। जब गाडी खुल गयी तो दोनों कुछ आश्वस्त हुए। हीरालालने कहा—"अब बताइये, आपको कहाँ पहुँचा दूँ। आपके घरमें अब कोई नहीं है, कहिये, आपके मायके पहुँचा दूँ अथवा यहाँसे कई स्टेशन आगे पूनाकी तरफ मेरे चाचा चाची हैं, वहाँ आपको रखकर फिर शत्रुओंसे बदला लेनेकी चेष्टा करूँ।"

सुशीला चिन्तामें जा पड़ी, वल्लभदासका क्या होगा। लड़कोंका क्या होगा, वे इस समय कहाँ हैं।

हीरालाल सुशीलाके मनोभाव समझ गया। बोला—"आप किस चिन्तामें पड़ी हैं? आपके लड़के सुरक्षित और बड़े आनन्दसे हैं। वे रामूके पास हैं। वल्लभदास अस्पतालमें धीरे-धीरे आरोग्य हो रहे हैं। उनके आरोग्य होते ही आपके पास ले आऊँगा।" इतना कह, हीरालालने सुशीलाको बहुत सी बातें बतायीं। बोला—"आज

इस बागमें आपकी ही खोज लेने आया था, पर राधारमणको सन्देह हो गया। उसने मुझे भी कैद किया।"

सुशीला कुछ शान्त हुई। बहुत देर तक कुछ सोचती रही। इसके बाद बोली—"इस अवस्थामें मायके न जाऊँगी। वह दूर भी है, उनकी खबर न मिलेगी। आपके गाँव ही चलूँगी।"

हीरालाल बोला—"जैसी आज्ञा। आप अब विश्राम करें।" इतना कह हीरालाल खिड़कीसे बाहर माथा निकालकर आकाशकी ओर देखने लगा।

इधर गाड़ी सुशीलाको लिये इस तरह तेजोसे जा रही थी उधर ठीक बारह बजे, राधारमण शराबके नशेमें मस्त, कमरमें छुरा और हाथमें हण्टर लिये उस इमारतमें जा पहुँचा। जाते ही उसने अपनी बिजलीकी बत्ती जलायी और बेधड़क सीढ़ियोंके सहारे नीचे उतर गया। इसके बाद सुशीलाकी कोठरीके दरवाजे पर जा पहुँचा। इस समय भी बाहरसे साँकल चढ़ी थी। राधारमणने साँकल खोलते खोलते ही कहा—"सुशीला! मैं आगया, देखूँ, अब कौन तेरे सत्य और सतीत्वकी रक्षा करता है?"

भनाककी आवाजके साथ साँकल खुल गयी। इसके बाद राधा-रमणने जोरसे लात मारकर दरवाजा खोल दिया। पर यह क्या? हाथ पैर बँधी, सब तरहसे लाचार सुशीला कहाँ है!

राधारमणका सर भन्ना उठा। शराबका नशा उतर गया। हाथ पैर बँधी सुशीला कहाँ चली गयी? वह भन्नाता हुआ उस कोठरीके दरवाजे पर पहुँचा जिसमें हीरालाल कैद था, पर वह

कोठरी भी खाली पड़ी थी। हाथमें आयी चिड़िया इस तरह उड़ गयी ! तो इन दोनोंको किसने छुड़ाया !

राधारमण हाथ पैर पटकता, गरजता ऊपर आ पहुँचा। चिल्ला-चिल्लाकर सब जमादारों और पहरेदारोंको बुलाने लगा। सब आये पर इस आश्चर्यमयी घटनापर सभी अवाक थे। किसीसे कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। सभी एक दूसरेका मुँह देखने लगे। खूब दौड़ धूप और खोज मची। पर कहीं भी उन दोनोंका पता न लगा। इस समय भी एक मोटा ताजा जमादार निर्द्वन्द भावसे दरवाजे पर बैठा हुआ गा रहा था—"निर्धनके धन राम।"

परन्तु बागके भीतरके हो-हल्लेमें किसीके कानमें उसकी आवाज न पहुँचती थी। राधारमणने सबको इधर-उधर बाहर दौड़ाया। बोला—"जहाँ मिले पकड़ लाओ।"

इसी समय उस जमादारने भी चिल्लाकर कहा—"जरूर पकड़ लाना, नहीं तो माई पर हाथ लगानेके लिये सबको लोहेका कड़ा इनाम मिलेगा।"

सबने उसकी ओर एक बार घूर कर देखा, परन्तु किसीको भी कुछ कहनेका साहस न हुआ। सब बाहरकी ओर दौड़ पड़े। थोड़ी देर बाद राधारमण ने उसे बुलाया। बुलाकर कहा—"यह कैसे हुआ मस्तराम !"

राधारमण जानता था कि यह रोज भाँग छानता है। उसने कहा—"बाबू ! निर्धनके धन राम ! किसी पर लाठी चलाना हो तो बताइये। माई लोगकी खबर तो राम जानें।"

राधारमण चुप हो रहा। उसने पूछा—"और कुछ हुक्म।"

राधारमणने झिड़ककर कहा—"पहरे पर जाओ।"

मस्तराम फाटक पर जाकर फिर जोरसे गाने लगा—"निर्धनके धन राम।"

सवेरा होते होते सभी लौट आये, पर सुशीला न मिली, न हीरालालका ही पता लगा।

राधारमणने मन-ही-मन कहा—"असली काँटा दूर किये बिना सुशीला हाथ न आयेगी।"

इस समय सवेरा हो गया था राधारमण कपड़े बदलकर बोला—"एक आदमी मेरे साथ चलो, मैं अस्पताल जाऊँगा।" उसने एक और भी दुरभिसन्धि खोज निकाली।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद
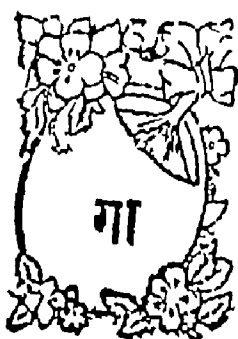
गाड़ी पहाड़ जंगल नदी नालोंको लाँघती तेजीसे आगे बढ़ती चली जाती थी। हीरालाल तथा सुशीला दोनों ही इस समय शान्त हो रहे थे। सुशीला एक कोनेमें अपनी चिन्तामें आँखें बन्द किये बैठी थी। हीरालालने समझा कि वह सो गयी है। अभी जिस स्थान पर उसे जाना था, वहाँ पहुँचनेमें देर थी। वह भी एक ओर लुढ़क पड़ा। आँख लग गयी।

एकाएक एक बार वह चौंककर उठ बैठा, देखता है तो डब्बेमें सुशीला नदारद। गाड़ी अब भी अपनी पूरी तेजीसे जा रही थी। हीरालालका कलेजा काँप उठा। सुशीलाने गाड़ीसे कूदकर आत्म-हत्या तो नहीं की। अन्य मुसाफिरोंसे पूछने लगा। मालूम हुआ कि पहले ही स्टेशन पर उतर गयी।

हीरालाल बोला—"सुशीलाको मुझपर विश्वास नहीं हुआ। हो भी कैसे सकता है। आखिर मैं भी तो राधारमणका दोस्त कहलाता हूँ।" उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। कुछ दूर बाद ही एक स्टेशन आया। हीरालाल भी उतर पड़ा। मन-ही-मन

उसने प्रतिज्ञा की—"जब तक अपनी वहनको खोज न लूँगा। घर न जाऊँगा।"

हाँ, वास्तवमें सुशीलाको हीरालाल पर विश्वास नहीं था। संगसे ही तो मनुष्य पहचाना जाता है, फिर सुशीलाको कैसे विश्वास हो। वह जानती थी कि हीरालाल राधारमणका साथी है। उसे अपराधी बनानेके लिये उसका चित्र भेजा गया था। शारदा आकर कह गयी थी कि यह घोर दुराचारी है—इतने पर भी सुशीला उस पर कैसे विश्वास कर सकती थी। उसने सोचा—"ललाटकी लिखनको कोई मेट नहीं सकता, जो होना हो सो हो, पर इस दुराचारीके साथ, उसके मकानपर न जाऊँगी।" वह मौका ही ढूँढ रही थी और जब हीरालालकी आँख लग गयी, उसे मौका मिला। वह स्टेशन आते ही तेजीसे दरवाजा खोल उतर गयी।

पहले ही कहा जा चुका है कि आज अमावस्याकी घनघोर अँधेरी रात थी पर सुशीलाको इस समय भय नहीं था। उसकी चालसे मालूम होता था कि उसे अपने जीवनकी ममता भी नहीं है। अतएव स्टेशनसे बाहर निकलकर उसने देखा कि सामने घोर अन्धकार छाया है। बस्ती कितनी दूर है इसकी उसे खबर नहीं थी। पर वह इतना जानती थी कि बम्बई इस ओर है। वह उधरहीको चली। वहुत दूर तक यों ही चली गयी। किसीने नहीं पूछा, कि तू कहाँ जा रही है। उसे स्वयं नहीं मालूम था कि उसका गन्तव्य स्थान कौन है? यों ही पैर बढ़ाती चली जाती थी। उसे अन्धकारका भय नहीं था; जीवजन्तु या जानवरोंका संशय नहीं था।

हृदयमें एक भयकर आँच बल रही थी। उस आँचने मानो उसका सब कुछ जला डाला था। जब थक जाती तो सड़कके किनारे एक ओर बैठकर ठण्डी साँसें लेती। इसके बाद फिर रवाना हो जाती थी। हा ! जिसका पति मृत्युशय्या पर पड़ा है पर उसे देख नहीं सकती, जिसके दो-दो सुकुमार बच्चे कहाँ चले गये इसका पता नही है उसकी दशा और क्या होगी ! वह सोचती—मेरी गोद खाली हो गयी। मेरे माथेका सिन्दूर भी रहता है या नहीं कौन जानता है ! यह सब यह सर्वनाशी रूप कर रहा है। हा भगवान ! तूने यह रूप क्यों दिया ? बैठी-बैठी सोचती फिर उठकर भागती थी।

धीरे धीरे रात बीत गयी, सवेरा हुआ पर सुशीलाकी गतिको विराम नहीं था। प्याससे कण्ठ सूख रहे थे—पैर शिथिल हो रहे थे, कॉटोंसे लहू लहान हो रहे थे—पर सुशीलाकी गति मन्द नहीं होती थी। वह तेजीसे दक्षिणसे उत्तर बढती ही चली जाती थी। इसी तरह जाते जाते पथ-भ्रष्ट होकर वह एक जगलमें जा पहुँची। यह पहाड़ी जंगल था। परन्तु सुशीलाको फिर भी सुध नहीं थी कि वह किधर जा रही है। वह आगे बढ़ती ही चली गयी।

एकाएक मनुष्य कण्ठस्वरने उसे चौका दिया। सुशीला चौंककर खड़ी हो गयी। बातकी बात में चार दुर्दान्त मनुष्योंने उसे आ घेरा। ये सभी बड़े ताकतवर, काले काले तथा भयावने थे। सुशीला खड़ी हो गयी। उनकी ओर आश्चर्यसे देखने लगी ? वे भी उसी तरह सुशीलाकी ओर देखते रहे। कुछ देर बाद सुशीला बोली—"तुम

लोगोंको क्या राधारमणने भेजा है ? उससे जाकर कह दो सुशीला मर गयी। यह उसकी ठठरी है।"

उनमेंसे एक बोला—"कौन राधारमण ?"

सुशीलाने कहा—"वही अत्याचारी।"

इसी समय घोड़े पर चढ़ा एक खूबसूरत तगड़ा जवान आता दिखाई दिया। उसने कड़ी आवाजमें दूरसे ही पूछा—"तुमलोग यहाँ क्या कर रहे हो ?"

उत्तरमें एकने कहा—"सरदार !" इसके आगेकी बात उसके मुँहसे न निकली। उसने अँगुलीके इशारेसे सुशीलाको दिखा दिया।

सरदार उसी जगह घोड़ा फेंकता जा पहुँचा। उस समय सुशीला उन्मादिनी वेशमें खड़ी थी। उसका सारा शरीर धूलसे भर रहा था, खुले केश नितम्बसे भी नीचे लटक रहे थे। उनपर भी धूल जम रही थी, चेहरा थकावटसे क्लान्त हो रहा था। आँखें नीरस और शुष्क हो रही थीं। पर कोयलेमें पड़ा हीरा भी क्या अपनी चमक त्याग देता है—एक ही नजरमें सरदारने देख लिया—यद्यपि दुःख और कष्टसे यह श्रान्त क्लान्त हो रही है पर असाधारण सुन्दरी है। ओह ! आज इस डाकू सरदारकी आँखोंमें भी सुशीलाका रूप समा गया। गरजकर अपने मनुष्योंसे बोला—"तुम लोग इसे क्यों तंग कर रहे हो ? यह कौन है ?"

उनमेंसे एक बोला—"यह पगलीकी तरह इधर ही जा रही थी। हमलोग पकड़कर सरकारमें पेश करना चाहते थे।"

सरदारने सुशीलाकी ओर देखकर कहा—"तू कहाँ जायगी ?"

सुशीला अब सारा रहस्य समझ गयी, जान गयी कि वह डाकुओंके फेरमें आ फँसी है। इस सरदार सम्बोधनने ही उसे सावधान कर दिया। कुछ चेतावनी, सी आ गयी, आँखोंमें आँसू भरकर बोली—"मुझपर दया कीजिये। मैं बम्बई जाऊँगी।"

उन आँसू भरी आँखोंने और भी गजब ढाहा। सरदारने कहा—"बम्बईमें तुम्हारा कौन है?"

सुशीलाने कहा—"सब कोई वहीं हैं।"

सरदारने आश्चर्यसे कहा—"सब कोई वहीं हैं फिर तुम यहाँ कैसे आयीं? क्या किसी यारके साथ भाग आयी थीं, जो तेरी इस्मत लूटकर तुझे जंगलमें छोड़, चला गया?"

सुशीला पर आज दुबारा कलंक लगा। उसके कलेजे पर एक गहरी चोट आयी। पर समय सब सहा लेता है। बोली—"नहीं मैं आफ़तकी मारी हूँ। मेरे देवता बीमार पड़े हैं। मुझे जाने दीजिये।"

पर सुशीला जैसी रूपवती स्त्री हाथमें आनेपर छोड़ना सच्चे मर्दका ही काम है। डाकू सरदारने कहा—"अच्छा तुम्हें बम्बई पहुँचानेका बन्दोबस्त किया जायगा, अभी मेरे साथ चलो।"

लेकिन सुशीला अपनी जगहसे टस से मस न हुई। सरदारने कहा—"यों खडे रहनेसे कुछ न होगा। तुम्हे चलना ही होगा। सीधी तरह न जाओगी तो मेरे साथी ये डाकू तुम्हे उठाकर ले जायँगे।"

सुशीला सोचने लगी। पर अब सोचनेसे क्या होता है? सरदार

अपने घोड़ेपर सवार हो गया। उसने घोड़ेपर चढ़कर जोरसे सीटी बजायी। तुरन्त ही इधर उधरसे दस बारह जवान दौड़ते हुए आ पहुँचे। उनकी ओर देखकर सरदारने कहा—"इस औरतको अड्डे-पर ले आओ। यदि सीधी तरह आये तो इसके जिस्मपर हाथ न लगाना; नहीं तो जबर्दस्ती उठा लाना।"

इतना कह, घोड़ा दौड़ाता हुआ सरदार चला गया। सुशीला की ओर देखकर उन डाकुओंमें से एक बोला—"बस जल्दी चल, आज तुझे ही गद्दी मिलेगी।"

सुशीलाने देखा, अब इनकार करनेसे काम न चलेगा। बोली—"चलो, जो वदा होगा, भोग लूँगी।"

सब सुशीलाको लिये घोर जंगलमें जा घुसे। जगलके भीतर ही, एक सुदृढ़ पुरानी इमारत थी। देखनेसे मालूम होता था, कि यह पुराने जमानेका कोई किला है। डाकू-दल सुशीलाको लिये, इसी मकानमें चला गया। जिस समय सुशीलाको लिये ये डाकू वहाँ पहुँचे हैं, उस समय सरदार एक बड़े कमरेमें बैठा हुआ था। सुशी-लाने यहाँ आकर भी बहुत कुछ कहा सुना। पर सरदारने एकपर भी कान न दिया। अपने आदमियोंसे बोला—"यह हिन्दू औरत है। इसे किसी हिन्दू मजदूरिनके सुपुर्द करो। नहला-धुलाकर खाना खिलाये।" इसके बाद सुशीलाको ओर देखकर बोला—"यहाँ से भागनेकी कोशिश न करना। नहीं तो जानसे मारी जाओगी।'

सुशीला अब अपनी विपत्ति अच्छी तरह समझ चुकी थी। कुछ न बोली—चुपचाप चली गयी।

इसके बाद सुशीला एक कोठरीमें कैद कर दी गयी। उसपर एक दासी नियुक्त कर दी गयी। उसने नहाने धोनेका बहुत आग्रह किया, पर सुशीला ज्योंकी त्यों पड़ी रही।

दिन बीत गया, सध्या हुई। दासीने आकर फिर बहुत समझाया, पर सुशीला कुछ न बोली। दासी उदास चित्तसे चली गयी। थोड़ी ही देर बाद फिर दरवाजा खुला। इस बार ऐसा मालूम हुआ मानों कोई चाँदका टुकड़ा उस कोठरीमें उतर आया हो। उसने आकर बडे प्रेमसे सुशीलाके बदन पर हाथ फेरा। सुशीला चौंककर उठ बैठी। देखा—सचमुच एक चाँदका टुकड़ा उसके सामने है। एक अनुपम सुन्दरी स्नेह-भरी दृष्टिसे उसे देख रही है। सुशीला मन-ही-मन सोचने लगी—"इस दस्यु-पुरीमें यह रूप कहाँ से आया?"

उसने बड़े प्रेमसे कहा—"उठो बहन! नहा धो लो, तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। मेरे रहते तुम्हारा कोई बाल बाँका न कर सकेगा।"

सुशीला रो पड़ी। बोली—"तुमलोग इस दुखियाको छोड़ दो। मैं पैरों पड़ती हूँ।"

वह रमणी उसके पास बैठ गयी। धीरे-धीरे उसकी पीठ पर हाथ फेर, उसकी सारी विपत्ति-कथा सुन ली। सुनकर बोली—"बिलकुल न घबराओ। यहाँ तुमपर कुछ भी आँच न आयेगी, पर भागनेकी कोशिश न करना, नहीं तो पकड़ी जाओगी और फिर मैं तुम्हें बचा न सकूँगी। मैं ऐन मौके पर तुम्हें बचा लूँगी।"

इसके बाद उसने अपने सामने उसे नहलाया-धुलाया। बोली—"दूध पियो। इसमें छूत न लगेगी।" सुशीलाने बहुत कुछ नाहीं

को, पर उसने न माना। जाते वक्त दासीसे कहती गयी—"इन बातोंकी खबर मालिक को न हो।"

इतना कहकर चुपचाप वहाँ से चली गयी। डाकू सरदार आज नशेमें मस्त था। एकाएक रातमें ग्यारह बजे, वह सुशीला-वाली कोठरीमें जा पहुँचा। बोला—'उठो, आज मैं तुम्हे अपनी बेगम बनाऊँगा।'

सुशीला काँप उठी। मधुसूदनको पुकारने लगी। डाकू सरदारके आगे गिड़गिड़ाने लगी। पर डाकू सरदारका कठोर हृदय बिलकुल न पिघला। कड़ककर बोला—"मेरा हुक्म मानो। मेरे साथ चलो।"

सुशीला अपनी जगह से न उठी। इसी समय उसने सीटी बजायी। तुरन्त ही एक डाकू वहाँ आ पहुँचा। उसकी ओर देखकर सरदारने कहा—"इसे आठ नम्बरवाले कमरेमें जबर्दस्ती ले जाओ।"

इस बार सुशीला गरज उठी। बोली—"खबरदार! मेरे शरीरपर हाथ न लगाना।"

सुशीलाकी वह रुद्र मूर्ति देखकर डाकू सहम गया। सुशीला बोली—"वहाँ लेजाकर मुझे क्या करोगे?"

डाकू सरदारने कहा—"तुम्हे अपनी बेगम बनाऊँगा।"

सुशीलाने कहा—"क्या आपने अबतक शादी नहीं की?"

सरदारने कहा—"जरूर की है, पर इस्लाम-धर्ममें कई शादियाँ जायज़ हैं।"

सुशीला—"पर मैं विवाहिता स्त्री हूँ। मेरे पति मौजूद हैं। मैं

आपकी बात नहीं मान सकती। मैं अपने प्राण दे दूँगी, पर आपकी अकशायिनी न बनूँगी।"

सरदार बोला—"लेकिन तुम्हारे इनकार करनेसे क्या होगा?"

सुशीलाने कहा—"आप जीवित अवस्थामें मुझे नहीं पा सकते। मर जाने पर फिर जो जीमें आये करे। आपको अभी हिन्दू नारीसे काम नहीं पड़ा है।"

सरदार बोला—"औरत! तू मुझे नहीं जानती, मान जा, मेरे हाथोंसे तुझे कोई नहीं बचा सकता। रुस्तम!"

रुस्तम आगे बढ़ा। चाहता ही था कि सुशीला पर हाथ लगाये और उसे पकड़ कर ले जाये कि सुशीला दो कदम पीछे हट गयी। उसने अपना आँचल कसकर अपने गलेमें लपेट लिया। बोली—"अभी जान दे दूँगी, मेरी लाशको तुम बेगम बनाना।"

इसी समय भिड़काया हुआ दरवाजा जोरसे खुल गया। डाकू सरदारने देखा—एक स्त्री दौड़ती झपटती भीतर घुस आयी और लपकती हुई सुशीलाकी बगलमें जाकर खड़ी हो गयी। बोली—"जान न देनी होगी, बहन! तुम्हारे बदले मैं जान दूँगी। पहले मैं मरूँगी, पीछे तुम!"

क्षण भरमें यह काम हो गया। रुस्तम पीछे हटकर खड़ा हो गया। उसकी फिर आगे बढ़नेकी हिम्मत न पड़ी और सरदार तो आश्चर्य चकित रह गया। बोला—"रे दिलारा, तुम यहाँ!"

दिलाराने कहा—"हाँ मेरे मालिक! मैं ही हूँ। मैं ही अपने

बहन की इज्जत इस्मत बचाने आयी हूँ। एक औरत ही औरतके दिलको समझ सकती है।"

सरदार—"तुम मेरे कामोंमें दखल न दो, दिलारा! तुम जाओ।"

दिलारा घुटने टेक कर बोली—"नहीं मेरे आक़ा! मुझे मुवाफ करो। मैं अपने मालिकको एक बेगुनाह पर जुल्म करते नहीं देख सकती। मैं अपने मालिक को एक सच्चा मर्द देखना चाहती हूँ, जो कमजोरोंको नहीं सताता, जो गरीबोंको तकलीफ नहीं देता और जो परायी औरतोंकी अपनी माँ-बहनकी तरह इज्जत करता है।"

"दिलारा! दिलारा! तुम नहीं समझतीं कि तुम क्या कर रही हो। क्या अपने मालिकके कामोंमें दस्तन्दाजी नेक औरतका काम है?"

दिलारा बोली—"मैं कभी दस्तन्दाजी नहीं करती, कभी आपके कामोंमें दखल नहीं देती, पर फिर कहती हूँ कि औरतका दिल औरत ही जानती है और मेरे मालिक! मैं यह भी जानती हूँ कि एक औरतको सतानेवाला इस दुनियाँमें मर्द नहीं कहला सकता, फतह-मन्द नहीं हो सकता। उसके लिये बिहिश्तका दरवाजा बन्द रहता है।

"पर यह तो काफिर औरत है, दिलारा! इससे निकाहकर मुसल्मान बनाना तो इस्लामकी शरायतके मुताबिक है। एक काफि-रको सच्चे ईमानमें लानेवालेके लिये क्या बिहिश्त का दरवाजा कभी बन्द रह सकता है, जाहिल औरत! जाओ दिलारा!! अपने कमरेमें जाओ।"

दिलाराने उसी तरह दृढ़तासे कहा—"कभी नहीं मेरे शौहर! मैं अपने प्यारे शौहरसे ऐसी नाजायज हर्कत कभी नहीं होने दूँगी।

कोई काफ़िर नहीं है, मेरे मालिक! सब अपनी अपनी राहसे एक ही जगह जाना चाहते हैं, दो खोदा हो नहीं सकते। इस दुनियाँमें किसीको काफिर समझना भूल है और दोजखकी राह बनाना है। यदि ऐसा ही होता तो खोदाका कह्र जब कभी पड़ता तो काफिरोंपर लेकिन मैं तो देखती हूँ कि सभी कौमें एक-साँ तकलीफ़ और आराम पाती हैं। भूल जाइये, मेरे मालिक, इन बातोंमें कुछ भी नहीं रखा है। ये खुद्गरजीके नमूने हैं।"

इस बार सरदारने बिगड़कर कहा—"दिलारा! तू इन बातोंको बिल्कुल नहीं समझती। तू नहीं जानती कि एक औरतके इस्लाम कबूल करनेपर किस तरह उनकी औलादसे हमारी क़ौम बढ़ती है। तू इन कामोंमें दख़ल न दे।"

दिलाराने उसी तरह दृढ़तासे कहा—"मानती हूँ, पर ज़बर्दस्ती किसीका मजहब नहीं बदला जा सकता है, प्यारे! यह तो उन मज-हबवालोंकी बेवकूफी है, कि ज़रा-ज़रा-सी बातपर अलग कर अपनी तादाद घटा रहे हैं। मजहब बदलना गुड़ियोंका खेल नहीं है। यह तो दिल और ईमानकी बात है। नहीं मेरे मालिक, एक औरतकी मर्ज़ीके खिलाफ़ आप कभी उसपर जुल्म नहीं कर सकते। मैं अपनी आँखों यह कभी नहीं देख सकती।"

इतना कह, दिलारा सुशीलाकी ओर देखकर बोली—"बहन! मैं नहीं जानती कि तुम कौन हो, मुझे बिलकुल मालूम नहीं कि तुम क्या हो, लेकिन तुम्हारा चेहरा देखकर मैं समझती हूँ, कि तुम दुखी हो, मैं तुमसे भीख माँगती हूँ, कि मेरे मालिक का कुसूर माफ

करो, उन्हें बद-दुआ न दो। यह नाचीज़, आँचल पसारकर तुमसे यही भीख माँगती है कि मेरे मालिकको बख्श दो। ओह! एक औरत की बद-दुआ।—. ....गजब के ....

इतना कहते कहते दिलाराकी आँखोंसे आँसुओंकी बूदें टपाटप सुशीलाके पैरोंपर गिरने लगी। सरदार—कठोर हृदय डाकू सरदार तो यह दृश्य देखकर अवाक् रह गया। इसके बाद सरदारकी ओर घूमकर, उसी तरह आँसुओंसे लबालब आँखोंसे, उसके आगे घुटने टेक, देखती हुई दिलारा बोली—"मेरे नेक शौहर! मेरी यह आरजू मान लो। यह मेरी बहन है, इसे छोड़ दो, और क़सम खा लो, मेरे मालिक! मेरे प्यारे! कि आजसे कभी किसी औरत पर जुल्म न करूँगा।"

इतना कह दिलारा इस तरह फूट-फूट कर रोने लगी, मानों उसकी कुछ बहुत बड़ी कीमती चीज़ खो गयी हो। इसी तरह रोती-रोती ही फिर बोली—"आप क्या देख रहे हैं? क्या यह भीख मुझे न मिलेगी प्यारे!"

एक डाकू सरदार पर भी औरतके आँसू विजय पा गये। सरदारकी आँखोंमें भी आँसू भर आये। उसने उठाकर दिलाराको अपनी छातीसे लगाते हुए कहा—"दिलारा! तुम्हारे लिये मैं हरवक्त तैयार हूँ। ऐसी कोई चीज़ नहीं, जो मैं तुम्हें न दूँ। यह जान भी दे सकता हूँ, दिलारा।"

दिलाराने गद्गद् स्वरमें कहा—"जानती हूँ, मालिक! अच्छी

तरह जानती हूँ, कि मेरा मालिक सच्चा मर्द है, इसीलिये तो बच्चों की तरह जिद कर बैठती हूँ।"

इतना कह दिलारा सीनेसे अलग हो, रुस्तमकी ओर देखने लगी। रुस्तम तुरन्त वहाँसे चला गया। इसके बाद दिलारा अपने स्वामीके चरण पकड़कर बोली—"आज बहुत बढ़िया दिन है मालिक! आज ही यह भी वादा करो, कि अब इस नाकिस खतरनाक पेशे को भी छोड़ दूँगा। बहुत तो इकट्ठा हो गया है। अब ज्यादा क्या होगा, इतनी दौलत तो कई पुश्त तक काम आयेगी।"

डाकू सरदार बोला—"ऐसाही होगा दिलारा! बोलो और कुछ चाहिये, जो माँगना हो, आज माँग लो। प्यारी दिलारा! तुम्हारी यह शक्ल तो मैंने आज ही देखी है। मैं आज समझा हूँ कि डाकू रहनेपर भी मैं सबसे ज्यादा खुश किस्मत हूँ।"

दिलाराने सुशीलाकी ओर इशारा कर कहा—"यह इनकी बदौलत! इन्होंने अपने सत्यका कुछ हिस्सा मुझे दे दिया है। तुम दोनोंकी बातें मैं बहुत देरसे सुन रही थी।"

इसके बाद सुशीलाकी ओर देखकर दिलारा बोली—"माँग लो बहन, तुम्हें भी जो माँगना हो। आज तुम्हारे यहाँ आनेकी वजहसे मेरी किस्मत खुल गयी। मेरी मुराद पूरी हो गयी।"

सुशीलाने कहा—"सिर्फ इतना ही कि मुझे इस जंगलके बाहर सुरक्षित पहुँचा दिया जाय।"

सरदारने कहा—"क्यों बहन! बम्बई नहीं।"

सुशीलाने कहा—"नहीं भाई साहब!"

सरदार आश्चर्यसे बोला—"क्यों ?"

सुशीलाने आद्योपान्त सारी घटनाएँ सरदारको कह सुनायीं, बोली—'पापका प्रायश्चित हो जाये तब जाऊँगी। तबतक तपस्या करूँगी।"

सरदारने बहुत कुछ कहा पर सुशीला कुछ भी लेनेको तैयार न हुई। बोली—"किसी पापका यह फल मिल रहा है, तपस्यासे ही यह पाप कटेगा।"

उस समय दिलारा सुशीलाको लिये अपने कमरेमें चली गयी। और दूसरे दिन स्वयं रुस्तम उसे जंगलके उस पार पहुँचा आया।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

प्रायश्चित्त

दिलाराकी चेष्टासे सुशीला फिर स्वतंत्र हो गयी, डाकू सरदारका एक साथी उसे आम रास्तेपर छोड़कर चला गया, अब उसके सरपर फिर चिंताका भूत सवार हो गया। वल्लभदास तथा अपने बच्चोंकी ओर उसका ध्यान लगा था। यद्यपि हीरालालसे वह सुन चुकी थी, कि उसके बच्चे रामूके पास हैं, पर उसे पूरा पूरा विश्वास न होता था। योंही चिंताओंके फेरमें वह पैर बढ़ाती आगे बढती चली जाती थी। चलते समय दिलाराने जबर्दस्ती कुछ रुपये उसे दे दिये थे। इनसे ही कुछ लेकर कभी कभी वह कुछ खा लेती और फिर तेजीसे आगे बढ़ती थी, इसी तरह राह चलते चलते कई दिन बीत गये। कोमल सुशीला बहुत कातर हो पड़ी, परतु जाये कहाँ? पथ उसे मालूम नहीं, अपने रूपका उसे ऐसा भय हो गया था, कि मनुष्य देखते ही या तो अपना मुँह छिपा लेती अथवा कहीं इधर-उधर छिप जाती थी। रातमें किसी वृक्षके नीचे इधर-उधर पड़ रहती थी।

इसी तरह कई दिवस बीत गये। अब सुशीलामें चलनेकी

शक्ति न रही। परंतु फिर भी वह साहस कर आगे बढ़ती ही गयी। संध्या हो गयी थी, कुछ अंधकार हो चला था। पासमें ही एक गाँव दिखाई दे रहा था। सुशीलाको जाते जाते राहमें जोरकी एक ठोकर लगी। अँगूठा फट गया, वह जोरसे चीखकर उसी स्थानपर बेहोश होकर गिर पड़ी। निर्बल शरीर यह आघात सम्हाल न सका।

वह कबतक बेसुध रही, कौन बता सकता है, परंतु जिस समय उसकी बेहोशी दूर हुई, उसने अपनेको एक घास-फूसकी झोपड़ीमें कम्मलपर पड़े हुए पाया। एक प्रौढ़ा उसके सिहाने बैठी हुई थी। उसे होशमें आयी देख, प्रौढ़ा बोली—"अब कैसी तबीयत है?"

सुशीला उठ बैठी। उसने देखा, ग्रामकी कोई स्त्री उससे तबीयतका हाल पूछ रही है। प्रौढ़ाने फिर भी बड़े ही कोमल स्वरमें पूछा—"अब कैसी हो?"

सुशीलाने कहा—"अच्छी हूँ।"

प्रौढ़ा बोली—"तुम तो आठ दिनोंतक बेसुध रहीं। जोरका बोख़ार चढ़ा था। किसी तरह दूध पिला पिलाकर जान बचायी है।"

सुशीला सुनकर मन-ही-मन बोली—"हा! इतनेपर भी मैं मर न गयी।" इसके बाद उसकी आँखोंसे आँसूकी दो चार बूंदें टपक पड़ीं। उन्हे पोछती हुई बोली—"माता, तुम कौन हो?"

प्रौढ़ा बोली—"मैं एक गरीब स्त्री हूँ। इसी जगह रहती हूँ। दो चार पशु हैं, उनसे ही पेट भर जाता है।"

सुशीला बोली—"तुम्हे और कौन है?"

प्रौढ़ाने कहा—"कोई भी नहीं है बेटी! मालिकको भगवानके यहाँ गये तो बहुत दिन हो गये एक बेटा था, वह भी चल बसा। तबसे अकेली ही किसी तरह जीवन बिता लेती हूँ।"

सुशीला कुछ आश्चर्यमें आयी। इधर एकांत स्थानमें यह किस तरह अपना जीवन बीताती है। बोली—"तब तुम्हारा खर्च-बर्च कैसे चलता है माता!"

प्रौढ़ा बोली—"बेटी! सब भगवान चलाता है, भगवानने हाथ पैर दिये हैं, मेहनत मजदूरीके लिये शरीरमें बल है—फिर खर्चा क्यों न चलेगा बेटी! शरीरमें पाप घुसने से ही ताकत चली जाती है, जो सत्यपर रहता है उसकी तो भगवान रक्षा करते हैं।"

सुशीला सोचने लगी—वृद्धा झूठ तो नहीं कहती। इसके बाद वृद्धाने धीरे-धीरे अपनी सारी जीवन-कथा कह सुनायी। किस तरह उसकी युवावस्थामें ही पति मर गये। किस तरह दो वर्षके बच्चेका उसने घोर परिश्रमसे लालन-पालन किया। पर वह भी रोता छोड़ चला गया। तबसे वह किस तरह अकेली एकांत जीवन बिता रही है। कहती कहती बोल उठी—"बेटी! मालिक कहते थे कि स्त्री-जाति माताकी जाति है। इसे केवल अपना ही स्वार्थ न देखना चाहिये। इसे तो सबके दुःख-दर्दके लिये हमेशा हृदय खोले तैयार रहना चाहिये। जो ऐसा करती हैं उन्हें भगवान मिलते हैं। कभी कष्टकी हवा नहीं लगती।" तबसे यही कर रही हूँ। जहाँतक बन पड़ता है, थके माँदे राह चलतोंको सहारा देती हूँ, जो अतिथि आ जाता है, उसकी जितना बनता है, सेवा करती हूँ, मन तो नहीं उकताता बेटी!

कोई कष्ट भी नहीं है। उस दिन चोट लगकर जब तुम बेहोश हो गयीं, तब तुम्हें भी उठा लायी। अब भगवानकी दयासे तुम अच्छी हो। थोड़ा दूध पियो।"

प्रौढ़ाने सुशीलाको भर-पेट दूध पिलाया, इसके बाद बड़े स्नेहसे उसकी सारी कथा सुनी। सुनकर बोली—"पापोंका गहरा प्रायश्चित्त होगा और यदि तुम सत्य पथपर हो तो जरा भी आँच न आयेगी।"

सुशीलाके हृदयमें प्रौढ़ाकी बातोंने साहस भर दिया। वृद्धा बोली—"तुम कहोगी तो तुम्हारे साथ चलकर बच्चोंको खोजूँगी। गाय-भैंस गाँवमें किसीके यहाँ रख दूँगी।"

दो चार दिनमें सुशीला और भी कुछ स्वस्थ्य हो गयी। अब उसके शरीरमें ताक़त भी आ गयी थी। प्रौढ़ाने बातें तथा सेवासे उसके हृदय तथा शरीरमें बल भी भर दिया था।

एक दिन संध्याके समय भीतर खाटपर बैठी सुशीला कुछ सोच थी। उस झोपड़ीके बाहर ही प्रौढ़ा बैठी चर्खा चला रही थी। इसी समय एक मनुष्यने वह आकर जल माँगा। प्रौढ़ा सब ओर इस कार्यके लिये विख्यात थी। सुशीला वहाँ आवाज़ सुनकर चौंक पड़ी। तुरंत ही बाहर निकल आयी। सामने ही देखती है, तो रामू! दोनों ही एक दूसरेको देखकर अवाक् हो गये। रामूने तो लपककर सुशीला के पैर पकड़ लिये। बोला—"मालकिनकी खोज में मैं गली-गली मारा फिर रहा हूँ। डाकूदलमें भी पहुँचा था, वहीं सब पता लगा। आपकी बहन दिलाराने अपनी दासीसे सारा हाल मुझे कहला दिया। सरदारने डाकू-दल तोड़ दिया। सबके सब बम्बई जा रहे

हैं। उनसे ही मालूम हुआ कि आप इधर ही आयी हैं, तबसे प्रत्येक गाँव, हरएक झोपड़ेमें आपको खोज रहा हूँ।"

स्वामिभक्त रामूकी बात सुनकर सुशीलाकी आँखोंमें आँसू-भर आये। बोली—"तुम मेरे अपनेसे भी बढ़कर अपने हो रामू! पर क्या करूँ, मेरा भाग्य! बच्चे कहाँ हैं?"

रामूने कहा—"वे सब मेरे भाईके पास बड़े आनदसे हैं? आप कोई चिन्ता न करें।"

सुशीलाने कहा—"बम्बईकी कुछ खबर सुनी।"

रामूने कहा—"आशा है, वे अच्छे ही होंगे?"

सुशीलाने कहा—"तुम्हें कितने दिनोंकी खबर है?"

रामू चुप हो गया। परसों ही हीरालाल उससे मिला था। उसने जो खबर सुनायी, वह बहुत ही भयंकर थी। रामू उसे सुशीलासे कहना न चाहता था।

रामूको चुप देख सुशीलाको संदेह हो गया। बोली—"चुप क्यों हो गये? सत्य बताओ रामू! वे कैसे हैं?"

रामूने कहा—"शरीरसे अच्छे हैं, लेकिन .."

सुशीला घबड़ाकर बोल उठी—"लेकिन क्या, जल्दी कहो।"

रामू बोला—"कहनेकी इच्छा नहीं थी, पर कहना ही पड़ता है मालकिन! कि मालिकको तीन बरसकी जेल हो गयी।"

सुशीला खड़ी-खड़ी रामूसे बातें कर रही थी। यह समाचार सुनते ही माथेपर एक हाथ मार जमीनपर बैठ गयी। प्रौढ़ा उसकी ओर दौड़ पड़ी। तुरंत गोदमें उठा लिया। बोली—"घबड़ाओ

नहीं, तीन बरस जाते देर नहीं लगती। यह उनके किसी पापका प्रायश्चित्त है, प्रायश्चित्त हो जानेपर ही तो सुखी होगी। घवड़ानेसे क्या होगा। सोना तो तपनेसे ही खरा होता है।"

रामू बोला—"ऐसी ही बात है, माता! परंतु उन्होंने अपने शत्रुसे भी ऐसा वदला लिया है, कि एक आँखका अधा और घोर कुरूप हो गया।"

सुशीलाने अपनेको सम्हाला। प्रौढ़ाकी गोदसे उतर पड़ी। बोली—"क्या हुआ था?"

रामूने कहा—"आपको ठीक-ठीक पता नहीं है। हीरालाल यद्यपि राधारमणका दोस्त बना हुआ है, पर वह वास्तवमें आपका पक्का भक्त और अपने ही दलका मनुष्य है। जब आप रेलसे उतर आयीं तो वह भी आपको खोजता इधर-उधर घूमता फिरता था। मैंने उसे समझा बुझाकर बम्बई मालिककी देख-रेखके लिये भेज दिया और स्वयं आपकी खोजमें निकला।"

सुशीला—"तब उसपर अविश्वास करना भूल हुई।"

रामू—"हुआ तो ऐसा ही, पर मुझे भी आपको सावधान कर देनेका अवसर न मिला।"

सुशीला—"फिर क्या हुआ?"

रामू—"राधारमणके जमादार हरनामसिंह उर्फ मस्तरामसे हीरालालको मालूम हुआ कि अब राधारमण मालिकपर हाथ साफ किया चाहता है, उसकी धारणा है, कि जब तक मालिक इस दुनियाँमें हैं, तब तक उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकती। उसने

बचों को भी खोजवाया था, पर उन्हें तो मैं उठा लाया था, इसलिये कुछ भी पता न लगा। इसीलिये, वह दूसरे दिन अस्पताल गया था, पर मालिक बेहोश थे। उसका काम न बना। वह चाहता था, कि मालिकसे प्रेम दिखाकर, सेवा करनेके बहाने अपने बागमें ले जाये। अस्पतालमें डाक्टरोंसे उसने कहा भी था, पर उन्होंने न छोड़ा। तबसे वह कई बार अस्पताल गया। पर डाक्टरने मिलने न दिया। इधर हीरालालके लिये, यह जरूरी हो गया कि उनको सावधान कर दे। अतएव, वह सारी बातें मालिकसे कह आया। तुम्हारे गायब होनेका समाचार सुन वे बहुत दुःखित हुए हैं परन्तु वश क्या था। हीरालालने बहुत तरहसे उन्हे समझा-बुझाकर शात किया। दूसरे ही दिन सबेरे राधारमण वहाँ जा पहुँचा। उसने बहुत तरहसे उन्हें समझाकर बागमें चलनेके लिये कहा, पर मालिकने न माना। बोले—"जबतक सुशीलाको न खोज निकालूँगा तबतक किसीको अपना मुँह न दिखलाऊँगा।"

इतना सुनते ही राधारमण बोल ऊठा—"मैं तुम्हारे लिये सब सुखकी सामग्री जुटा दूँगा। जो दुराचारिणी चली गयी, उसकी क्या चिंता करते हो?" तुम्हें दुराचारिणी कहना ही राधारमणका काल हो गया। मालिक झपटकर उठ बैठे और पलंगके पास ही रखी पीकदानी इस जोरसे उसके मुँहपर मारी कि उसका आधा चेहरा फट गया। एक आँख तो उसी समय बाहर निकल पड़ी, गाल और नाकका कुछ हिस्सा भी कट गया। अस्पतालकी बात थी, मुकद्दमा स्पष्ट था। यद्यपि हीरालालने उन्हे बचानेकी बहुत कुछ चेष्टा की पर

मालिक बच न सके। उन्हें तीन वर्षकी सजा हो गयी।"

सुशीला कातर हो पड़ी। बोली—"इसी अभागिनीके कारण ही उन्हें अतमें जेल भी जाना पड़ा। अब मैं यह जीवन ही समाप्त कर दूँगी।"

प्रौढ़ा बड़े ध्यानसे इनकी बातें सुन रही थी। सुशीलाकी अंतिम बात सुनते ही बोल उठी—"और क्या करोगी? अपनी जान दे दोगी, जिसमें तुम्हे जो इतना प्यार करता है, जिसने तुम्हे जरा-सा कलंक लगते देख, शत्रुको अंगहीन कर दिया, उसे और भी रोने कलपनेका अवसर दे जाओगी और बच्चोंको कौन देखेगा? यह तो किया न होगा कि अपनी मेहनतसे गृहस्थी ऐसी सजा लो कि छूटकर आनेपर उन्हे कोई कष्ट न हो और शत्रुसे भी बदला लो।"

प्रौढ़ाने बड़े तपाक से यह बात कही। सुशीला तो उसकी बात सुनकर अवाक् हो गयी।

प्रौढ़ाने फिर कहा—"जो होना था हो गया, तुमपर कलंक लगानेका नतीजा, यह हुआ कि शत्रु जीवन-भरके लिये अंगहीन हो गया। समझ लो, तुम्हारी विपत्तियोंका अंत और शत्रुकी विपत्ति और प्रायश्चित्तका आरंभ हो गया। यह क्या घबड़ानेका अवसर है?"

सुशीलाको उसकी बात चुभ गयी। बोली—"ठीक कहती हो माता, आजसे मैं तुम्हारा ही उपदेश ग्रहण करूँगी। अच्छा माता, अब आज्ञा दो, आजसे मैं अपने पैरों पर खड़ी होनेकी ही चेष्टा करूँगी।"

प्रौढ़ा बोली—"हाँ, अब तुमने माताओं जैसी बात कही है। बेटी! मैं तो गाँवकी रहनेवाली हूँ, पढ़ना लिखना कुछ नहीं जानती पर इतना अवश्य सुना है और जानती भी हूँ, कि जो स्त्री माता बनना जानती है, उसके हजारों अपने होते हैं। कहो तो अभी यह सारा गाँव तुम्हारे दरवाजे पर इकट्ठा कर दूँ। विपत्तिमें घबड़ाओ नहीं, माँ बनो, संसार भरकी माँ बनो—समूचे जगतका प्रेम पाओगी। जाओ, भगवान तुम्हारा मगल करें, यह अपनी पोटली लो।"

इतना कह, उसने दिलाराके दिये हुए रूपयोंकी छोटी-सी पोटली लाकर सुशीलाके हाथमें दे दी। बोली—"पर आज नहीं जाना होगा, कल सवेरे जाओ, रातमें कहाँ जाओगी।"

इसके बाद सुशीला और रामूमें बहुत कुछ परामर्श हुआ और दूसरे दिन दोनों ही उस गाँवको छोड़ एक ओरको रवाना हो गये।

बीसवाँ परिच्छेद

तपस्या

रवदाके पास एक गाँवके एक कच्चे मकानमें आज सुशीला अपने बच्चोंको लिये तपस्वी जीवन बिता रही है। आज बंबईवाली न वह शान शौकत और ठाट बाट है, न नौकर चाकर ही दिखाई देते हैं। एक कच्चा मकान, उसके सामने थोड़ी-सी हरियाली है। रामू ही उसका रक्षक है और उसके बच्चे ही उसकी सम्पदा। इसके सिवा कुछ नहीं है। स्वामि-भक्त रामू अपने मालिकके मुकद्दमेमें, हीरालाल-की मार्फत अपना समूचा संग्रह समाप्त कर चुका है और सुशीला—वह तो सर्वस्व-त्यागिनी होकर ही राधारमणके घरसे निकली थी। इसके बाद दिलाराने जो कुछ दे दिया था, वह कितने दिनों तक चल सकता था? उसमें कुछके तो बुनाईके सामान आ गये, कुछ खर्च हो गये। जिसे कभी दुःखकी हवा न लगी, जिसने कभी आपद्-विपदका नाम न जाना—जिसने कभी पाप-पथपर पैर नहीं बढ़ाये-उसकी यह अवस्था! मायामयकी माया कौन जानता है!

पर इतनेपर भी वह अपने को सुखी समझती है—इस समय राधारमण वाली विपत्ति उससे दूर है और यद्यपि उसके स्वामी कारागारमें हैं—पर हैं, पास ही।

सुशीला एक दिन यों ही चिन्ताग्रस्त अवस्थामें बैठी बैठी कुछ सोच रही थी कि इसी समय रामूने रुपये डेढ़ रुपयेके पैसे उसके सामने लाकर रख दिये। सुशीला बोली—"आज तो बहुतसे पैसे ले आये।"

रामूने कहा—"आज बिकरी अच्छी हुई। मोजे बहुत अच्छे बने थे, लोगोंको खूब पसंद आये। पास ही मिलमें चला गया था, वहाँ सबके सब बिक गये।"

सुशीलाने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"रामू, तुम्हीं मेरे विपद्-बधु हो, जाओ कलके लिये कुछ सामान ले आओ।"

इतना कह उसने आँसू पोंछे और फिर मोजा बीनने बैठ गयी। हाँ, यही उसकी आजकलकी दिनचर्या थी। कभी वह बिनाईकी बढ़िया सामग्री बनाकर रामूको देती, वह बेच लाता, कभी दो चार दिन दिनरात परिश्रम कर और चीजें तैयार करती, उसे बिकवा मँगाती। गाँवकी लड़कियोंको एकत्र कर पढ़ाती, इसी तरह उसके दिन बीतते थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि थोड़े ही दिनोंमें गाँवमें उसकी कदर हो गयी, ग्राम-वासिनियाँ उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगीं। अपने बच्चोंको शिक्षा वह स्वय देती थी और जो समय बचता था उसे शिल्पके काममें लगाती थी।

आज रविवारका दिन था। स्वामीको देखे बहुत दिन हो गये थे। सुशीला उन्हें देखनेके लिये व्याकुल हो रही थी, पर न जाने क्यों जेल तक जानेका उसे साहस न होता था। वह अपने रूपसे भय खाती थी—शायद किसीकी कुटिल दृष्टि पड़ जाये, पर आज

उसका जी न माना। उसने रामूसे बुलाकर कहा, पर रामूने कहा—"थोड़े दिन सब्र कीजिये। मैं आज मालिकसे पूछ लूँ। वह स्थान आपके जाने योग्य नहीं है।"

जो भय सुशीलाको था, वही रामूको। रामू दोनों बच्चोंको लेकर वल्लभदाससे मिलने चला गया। सुशीला उसी तरह आँसू बहाती बैठी रह गयी। लगभग दो-पहरके बाद रामू लौट आया। बोला—"मालिक मजेमें हैं, आप चिन्ता न करें। लड़कोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए हैं। मैंने कुछ फल उन्हें पहुँचा दिये हैं।"

रामूकी ओर देखकर सुशीलाने कहा—"पर फलके लिये पैसे कहाँसे आये ?"

रामूने कुछ उत्तर न दिया। इतना ही कहा—"मैं उन्हे कुछ न कुछ बराबर ही पहुँचा आता हूँ, आज भी दे आया।"

.इतना कह, वह एक ओर जाना ही चाहता था, कि सुशीलाने दो जोड़े मोजे और एक स्वेटर निकाल कर दिया। बोली—"आज इसे बेच लाओ। देखो, ये यहाँ न बिकेंगे। पूना या बंबई जाना होगा।"

रामू तो देखकर चकित हो गया। बोला—"मैं नहीं जानता था कि इतनी बढ़िया चीजें हाथसे बन सकती हैं। इनका तो खासा दाम मिलेगा।"

सुशीला बोली—"तुमसे जो ऊन मँगवाया था, वह आज समाप्त हो गया। अतएव, तुम भरपूर ऊन लेते आना और साथही मैं एक सूची देती हूँ,जरदोजीका काम करनेके लिये भी सामान इकट्ठे करने होंगे।"

हाँ सुशीला इस समय अपने उद्योगमें लगी थी। वह अपने हृदयके दु खको हृदयमें ही दबाकर, इस बातकी चेष्टा कर रही थी, कि उसकी यह दुरवस्था दूर हो। उसने पता लगाकर गाँवकी अनाथिनी विधवाओंको अपने यहाँ बुलाना और उनको गंजी, मोजें बीनने, फूल-पत्तीका काम करना और लैस बनानेका काम सिखाना आरभ कर दिया था। सबेरे कुछ खाद्य सामग्री तैयारकर रामूको तथा बच्चोंको खिला पिलाकर, रामूको बेचनेके लिये भेज देती और कुछ ग्राम्य-स्त्रियोंके साथ दिन-रात परिश्रम कर चीजें तैयार करती थी। इसी तरह थोड़े ही दिन बाद, बहुतसी चीजें तैयार होने लगीं। रामू उन्हें बेच लाता था। थोड़े ही दिनमें ऐसी अवस्था आ पहुँची और उसकी बनायी चीजें लोगोंको इतनी पसंद आने लगीं कि व्यापारियोंके आर्डर मिलने लगे। अब यह मजा आया कि ग्राम्य-स्त्रियाँ आपसे आप उससे काम सीखने आने लगीं। सुशीला अपनी आमदनीसे उन्हे भी देती और स्वयं भी लेती थी। उन अनाथाओंके हाथमें रुपये पड़नेपर वे भी बहुत प्रसन्न होती थीं।

इसी तरह लगातार परिश्रम करते करते बहुत जल्द सुशीलाकी दुरवस्था दूर हो गयी। परतु अब वह वल्लभदाससे मिलनेके लिये बहुत ही व्याकुल हो रही थी। उन्हे देखे बहुत दिन हो गये थे। अतएव एक दिन वह जबर्दस्ती रामूको साथ लेकर वल्लभदाससे मिलने जा पहुँची। बोली—“जो होना होगा, होगा—अब नहीं रुक सकती।” लाचार रामूको उसे लेकर जाना ही पड़ा।

पर यह मिलन भी वृथा ही हुआ। यरवदा जेलके मिलनेवाले

कमरेमें जँगलेके भीतर वल्लभदास थे और बाहर सुशीला अपने बच्चोंका हाथ पकड़े खड़ी थीं, न जाने कितनी ही बातें करनेकी अभिलाषा लेकर दोनों आमने सामने खड़े थे, परंतु दोनोंकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहनेके सिवा मुँहसे एक भी बात न निकलती थी। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता था त्यों त्यों इनकी कातरता बढ़ती ही जाती थी। अंतमें निश्चित समय बीत गया। पुलिसके सिपाहीने समय बीत जानेकी सूचना दी, एक भी बात न हो पायी, सुशीलाने हाथ बढ़ाकर वल्लभदासके पैर छुए और लौट आयी। इस समयका करुण दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित अन्य मनुष्योंकी आँखोंमें भी आँसू भर आये।

परंतु ज्योंही वह बाहर निकली त्योंही एक ऐसी घटना उसकी आँखोंके सामने आयी जिसने उसे चकित, विस्मित और अचम्भित कर दिया। रामू भी कुछ चौंक पड़ा। उसने देखा कि जेलखानेकी एक गाड़ी कुछ कैदियोंको लेकर आयी हुई है, उसमेंसे एक आँखसे हीन, कटा हुआ चेहरा लिये राधारमण उतरा। उसके हाथोंमें हथकड़ी पड़ी हुई थी और कमरमें रस्सी बँधी थी।

उसकी यह दुरवस्था देख सुशीला चौंक पड़ी। इसी समय उसे उस ग्राम्यवासिनी प्रौढ़ाकी बात याद आयी। उसने कहा था—"तुम्हारे शत्रुके पापका फल मिलनेका अवसर आ गया।" सुशीला एक ओर हट गयी। राधारमणकी दृष्टि न पड़ने दी पर। रामू न माना। वह सुशीलाको एक ओर हटा, दोनों लड़कोंको उसके पास खड़ाकर, उस

स्थानके पास जाकर बोला—"ऐं राधारमण बाबू ! क्या पापका फल आरम्भ हो गया !"

राधारमणने घूमकर उसकी ओर देखा और सर झुका लिया। इसी समय पुलिसके एक सिपाहीने उस स्थानसे रामूको हटा दिया। रामूका उद्देश्य सिद्ध हो गया। उसने सुशीलाके पास आकर कहा—"बम्बईमें कुछ भयकर घटना घटी है। मुझे आज ही बम्बई जाना होगा। हीरालालसे भी बहुत दिनोंसे भेंट नहीं हुई है।"

सुशीलाने कोई उत्तर न दिया। वह इस समय ईश्वरकी न्याय-परायणता पर विचार कर रही थी। राधारमणके कारण ही आज उसकी यह अवस्था हो रही थी। परन्तु इतने पर भी उसने रामूको सम्बोधन कर कहा—"ऐसा क्या हुआ, जो इन्हें जेल हो गयी ? यह तो अफ्सोसकी बात है !"

रामू बोला—"यह उनके पापका प्रायश्चित्त हुआ है।"

जिस समय ये लौटकर घर आये हैं। उस समय सध्या होनेमें कुछ देर थी। सामने ही दरवाजेपर एक पालकी रखी दिखाई दी। सुशीलाने कहा—"इस पालकीमें कौन आया है ?"

तुरन्त ही एक ओरसे रुस्तम आ पहुँचा। अभिवादन कर बोला—"मालकिन आयी हैं, बहुत देरसे आपकी राह देख रही हैं।"

सुशीला लपक कर भीतर जा पहुँची। सामने ही एक आसनपर दिलारा इस तरह निर्द्वन्द्व भावसे बैठी हुई थी मानो यह उसका ही घर हो। सुशीलाको देखते ही उसने लपक कर उसे छातीसे लगा लिया। बोली—"किस मुश्किलसे अपनी बहनका पता लगा सकी हूँ।"

सुशीलाको वे दिन याद आ गये। आँखोंमें आँसू भर कर बोली—"तुम्हारा उपकार जीवन भर न भूलूँगी। तुमने मेरी ही नहीं, इन बच्चोंकी भी जान बचायी है।"

दिलारा बोली—"पगली हुई हो। हमलोगोंमें क्या कुछ करनेकी ताकत है। यह उसकी मर्जी और तुम्हारे सत्यकी ताकत थी बहिन!"

सुशीलाने कहा—"फिर भी अगर तुम उस मौके पर न पहुँच जातीं तो... न जाने क्या होता।"

दिलारा ठठाकर हँस पड़ी। बोली—"होता क्या! मैं एक सौत पाल लेती।" इतना कह फिर बोली—"पर क्या तुम्हें मेरी याद भी कभी आती है?"

सुशीला बोली—"बहन! मेरा रोम रोम तुम्हें आशीर्वाद दे रहा है।"

दिलारा बोली—"यह सच है, इसमें कोई शक नहीं। क्योंकि अगर तुम वहाँ न पहुँचतीं तो यह मौक़ा न आता। और यह मौक़ा न आता तो मेरे मालिक यह पेशा न छोड़ते। पता लगाते लगाते मुझे यह भी मालूम हुआ है कि तुम्हारे मालिकको सजा हो गयी है।"

सुशीलाने सारी घटनाएँ कह सुनायीं। दिलाराने कहा—"यही पता लगाने मुझे भेजा गया है। उन्हे छुड़ानेकी कोई तदबीर भी हो रही है?"

सुशीला बोली—"कौन कर सकता है बहन! मेरी क्या यह ताकत है, कि अपील करूँ?"

दिलाराने कहा—"अब मुझे इजाजत दो। शाम हो रही है। शामके पहलेकी गाड़ीसे ही बम्बई पहुँचना होगा। मेरे मालिकका ऐसा ही हुक्म है।"

सुशीला—पर मेरा पता कैसे मालूम हुआ?

दिलाराने कहा—"यह रुस्तम ही पता लगा ले गया।"

सुशीला—और हमलोगोंको खबर तक नहीं।

दिलारा—तुम्हे शायद मालूम नहीं है, कि हमलोगोंने बम्बईमें कारबार खोल लिया है। तबसे ही तुम्हारी खोज हो रही है।

सुशीला—नहीं! मुझे कोई खबर नही है।

दिलारा बोली—"बम्बई चलने पर दिखाऊँगी। कब आओगी।"

सुशीला बोली—"तपस्या पूरी होने बाद।"

अभी दिलारा कुछ उत्तर देना ही चाहती थी, कि इसी समय बाहरसे किसीने रामूका नाम लेकर पुकारा।

सुशीला चौंक पड़ी। यह तो हीरालालकी आवाज थी। तुरन्त ही रामू एक ओरसे दौड़ता हुआ आ पहुँचा। बोला—"हीरालाल बाबू! आप यहाँ कैसे आ गये?"

हीरालालने कहा—"बहुत जरूरी बात है। रामू, तुम जरा इधर आओ।"

रामू हीरालालको लेकर एकान्तमें चला गया। उन दोनोंमें घण्टों किसी विषय पर बातचीत होती रही।

इधर सुशीलाने दिलाराको अपना कार्य-क्रम बताना शुरू किया। उसने अपनी तथा ग्रामकी अनाथा विधवाओंकी बनायी सारी चीजें

दिखाई। दिलारा तो आश्चर्यमें आ गयी। बोली—"सचमुच तुम देवी हो। तुम जैसी बहन मिलना, मेरी खुशकिस्मती है।"

इसके बाद दिलाराने कुछ रकम सुशीलाको देनी चाही। परंतु सुशीलाने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि यदि अब तुम्हारी रकम लूँगी तो मेरी तपस्यामें बाधा पड़ेगी। मेरी तपस्या यही है कि अपने पैरों पर खड़ी होऊँ। परंतु दिलारा भी सहज स्त्री न थी। सुशीलाको इस तरह कुछ स्वीकार न करते देख, उसने भरपूर दाम देकर वहाँ तैयार की हुई सारी सामग्रियाँ खरीद लीं। अब सुशीला आपत्ति न कर सकी। इसके बाद जाते समय सुशीलाकी ओर देख कर बोली—"मैं जाती हूँ। बंबई जाकर यह कोशिश करूँगी कि अपनी बहनको सुखी देखूँ।"

हीरालाल चला गया। वह भीतर भी न गया। इसी समय रामूने बाहरसे ही पुकारकर कहा—"मालिकको छुड़ानेके लिये अपील हो गयी है।"

सुशीलाने पूछा—"किसने किया?"

रामू बोला—"सेठ आनंदमोहनने।"

दिलाराने एक ठण्ढी साँस ली। बोली—"बहनकी एक खिद-मत करना चाहती थी, पर वह मौका भी न मिला।"

इसके बाद सुशीलासे बिदा होकर दिलारा चली गयी।

रामूने भीतर जाकर कहा—"मैं आज बंबइ जाऊँगा।"

सुशीला—क्यों?

रामू—सेठ आनंद मोहनने बुलाया है?

सुशीला—क्यों ?

रामू—अपीलके संबधमें कुछ बातें जाननी हैं ।

सुशीला—हीरालाल क्यों आये थे ?

रामू—यही खबर देने कि मेरी खोज हो रही है।

सुशीला—आनद-मोहनने क्यों अपील की ?

रामू—ये सब बातें आनेपर ही बताऊँगा ।

सुशीला—राधारमण को क्यों सजा हुई ?

रामूने कहा—"यह लंबा दास्तान है। और अब मुझे समय नहीं है। आपकी रक्षा अब ये गाँव वाले करेंगे। मुझे जाने दीजिये। रुपयोंकी अब आपके पास कमी नहीं है। मैं गाँवके मनुष्यों से कहता जाऊँगा।"

इतना कह, रामू वहाँ से चला गया और उसी समयकी गाड़ी से बबई रवाना हो गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

परिवर्तन

वृद्ध आनंदमोहनका वही ठाट-बाट, वही आन-बान है, पर अब उनके चेहरे पर वह प्रसन्नता नहीं है। उनके हृदयकी प्रसन्नता, मनका उत्साह, शरीरका तेज न जाने कहाँ चला गया। उस दिन उस अपरिचित मनुष्यने जो प्रेम-लीला उन्हे दिखा दी, उसने उनके जीवन का सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। उनके हृदयका आनंद चला गया और वे अपनेको जीवित ही मुर्देके समान समझने लगे।

उस दिन जब उनकी बेहोशी दूर हुई, उन्होंने अपनेको उसी एकांत कमरेमें पड़े हुए पाया। बाहर उस बड़े कमरेसे अब भी गानकी तानकी ध्वनि आ रही थी, पर आनद-मोहनके हृदयमें घोर हाहाकार मचा हुआ था। यह गाना-बजाना उन्हे विषकी तरह मालूम होने लगा था। उन्होंने तुरंत ही घंटी बजायी। नौकर दौड़ता हुआ भीतर आ पहुँचा। उससे बोले—"बाहर, उस बड़े कमरेमें खबर दे दो, कि मेरी तबीयत खराब हो गयी है, गाना बदकर दिया जाये।" नौकर प्रबंध करनेवालेको सूचना दे आया।

तुरंत ही गाना बजाना बंद हुआ। उनके इष्ट-मित्रोंने उनसे मिलना चाहा, इनमें राधारमण प्रधान था पर, वे किसीसे भी न

मिले। सभी उदास चित्तसे अपने अपने घरकी ओर रवाना हो गये। थोड़ी देर बाद ही वह स्थान शांत हो गया। एकाएक गाना बंद होजानेकी खबर ऊपर महलमें भी जा पहुँची। शारदाने भी सुना। तुरत ही दौड़ती हुई उस कमरेमें आ पहुँची, जिसमें आनद-मोहन थे।

आनद-मोहन इस समय अधलेटी अवस्थामें उसी सोफापर बैठे हुए थे। वे अपना कर्तव्य सोच रहे थे, इसी समय एकाएक दरवाजा खुला। बड़े ठाट-बाटसे सजी-सजायी शारदा भीतर आ पहुँची। बोली—"आपकी तबीयत कैसी है? यह नाच गाना क्यों बद हो गया?"

वृद्धका जी जल उठा। परंतु उन्होंने अपनेको सम्हाला। बोले-"कुछ नहीं, यों ही कुछ तबीयत खराब हो गयी है।"

शारदा—"तो यहाँ क्यों बैठे हैं, चलिये, ऊपर चलिये।"

वृद्ध ध्यानसे शारदाका चेहरा देखने लगे। इस समय मानो शारदा रसकी खान हो रही थी। मन-ही-मन वृद्धने कहा—"आह! यदि यह भीतर-बाहर एक समान ही होती तो मैं कितना सुखी होता।"

वृद्धका हृदय घोर ज्वालासे दग्ध होने लगा। शारदा बोली-"क्या सोच रहे हैं, ऊपर चलिये, आरामसे लेटियेगा।"

एकाएक वृद्धके मुँहसे निकल पड़ा—"मेरे भाग्यमें आराम नहीं बदा है शारदा!"

शारदा चौंक पड़ी। बोली—"ऐसा क्यों? क्या हुआ?"

वृद्धने एक ठण्डी साँस ली और चुप होगये। शारदाको कुछ

संदेह-सा हो गया। मनुष्यका अपना पाप ही अपनेको खाये डालता है। बोली--"मुझसे कोई अपराध हुआ है?"

इतना कह, वह उसी सोफापर बैठ गयी। हाथ बढाकर वृद्धका हाथ पकड़ना चाहा। परन्तु आनन्द मोहन एक ओर हट गये। बोले—"इस वृद्धका हाथ पकड़कर अब क्या करोगी।"

शारदा रोने लगी, सिसकियाँ भरने लगी। धीरे-धीरे यह रोना पंचम स्वरपर जा पहुँचा। पर वृद्ध अपने स्थानसे टससे मस न हुए। और वारकी भाँति आज वृद्धने शारदाको मनानेकी जरा भी चेष्टा न की। शारदाका यह अस्त्र खाली गया। उसने देखा—यह नयी बात है। सन्देह और भी बढ़ गया। कहीं पाप फूट तो न गया! आनन्द-मोहनके कानोंमें भनक तो न जा पड़ी। बोली—"आज आप ऐसे क्यों हो रहे हैं?"

आनन्द-मोहनने कहा—"सोच रहा हूँ, कि अब तबीयत अच्छी नहीं रहती, यह जायदाद सब तुम्हारे नाम लिखकर, कुछ दिन कहीं एकान्तमें भगवानका भजन करूँ।"

शारदाने आज तक कभी इस वृद्धके मुँहसे ऐसी बात न सुनी थी। सुनकर बोली—"आज कोई नयी बात हुई है क्या?"

वृद्धने कहा—"नयी बात कौनसी होगी। बुढ़ापेके व्याहमें तो ऐसा होता ही है।"

शारदाने कहा—"फिर आपने व्याह ही क्यों किया। यह दिन-रात का कोसना और इस ढंगकी बातें अच्छी नहीं लगतीं। मैंने

सुना कि आपकी तबीयत खराब हो गयी है। इसीलिये आयी हूँ। लेकिन· ···

एकाएक वृद्धके मुँहसे निकल गया—"नहीं तो उस पीछेवाले कमरेमें खूब आनन्द करतीं।"

इतना सुनते ही शारदा काँप उठी। परन्तु वह भी कम चतुरा न थी। बोली-"आप क्या कह रहे हैं? पीछेवाला कमरा कौनसा?"

वृद्धने गरज कर कहा—"शारदा! मैं अन्धा नहीं हूँ। मुझे सब खबर है। तुम अपने कमरेमें जाओ।"

इतना कह आनन्द मोहन उठकर खड़े हो गये। बोले—"मेरी बातोंका प्रतिवाद करनेकी जरूरत नहीं है। मैंने तुम्हारी समस्त लीलायें अपनी आँखों देखी हैं। इतना ही समझ लो कि पाप छिपता नहीं है। अपने कमरेमें जाओ और आनन्द करो। मैंने तुम्हे प्यार किया है। अतएव कष्ट नहीं दूँगा। यहाँ सारी जायदाद छोड़कर चला जाऊँगा। तुम आनन्दसे इसका उपभोग करना।"

शारदाको फिर वृद्धने क्षणभर भी वहाँ ठहरने न दिया। उसी दिनसे शारदा और आनन्दमोहनमें बात-चीत, मिलना-जुलना बन्द हो गया। आनन्दमोहनने ऊपर जाना त्याग दिया। उनकी रसोई अलग बनने लगी। शारदा एक प्रकारसे वन्दिनी हुई। न तो कोई ऊपर जा सकता था और न उसे ऊपरसे नीचे ही उतरनेकी इजाजत थी।

परन्तु सदाकी स्वतंत्र रहनेवाली विलासिनी शारदाके लिये यह असह्य हो गया। इसी समय उसे यह भी समाचार जमुनाके द्वारा मिला कि वल्लभदासने राधारमण पर चोट पहुँचायी है। शारदा

और भी व्याकुल हो उठी। पर वृद्धने इतना कड़ा प्रबन्ध कर रखा था कि शारदाके पास कोई पहुँच न पाता था। शारदाने आनन्द-मोहन से मिलकर अपना अपराध क्षमा करानेकी बहुत कुछ चेष्टा की पर आनन्दमोहन वैसे ही दृढ़ रहे। उन्होंने एक बार भी शारदा को नीचे उतरनेका आदेश न दिया।

महीनों राधारमण रोग शय्यापर पड़ा रहा, परन्तु शारदा एक बार भी उसके पास न जा सकी। वह भयंकर रूपसे उन्मत्त हो उठी। परन्तु जमुनाकी मार्फत पत्र भेजनेके सिवा और कोई भी वश न चलता था। वह किसी तरह भी उस तक नहीं पहुँच पाती थी। अन्तमें राधारमण अच्छा भी हो गया, पर वह जा न सकी।

एक दिन संध्याके समय आनन्दमोहन मलिन चित्तसे अपने कमरेमें बैठे हुए थे, इसी समय हीरालाल उनके पास आ पहुँचा। वृद्धने बड़ी खातिरसे बैठाया। बोले—"आप तो राधारमणके मित्र हैं न? एक बार पहले भी आये थे?"

हीरालालने एक पत्र निकालकर आनन्दमोहनको दे दिया। आनन्द मोहनने पत्र ध्यानसे पढ़ा।

पत्र पढ़कर आनन्दमोहनका चेहरा उतर गया। वे अपनी कुर्सी-से उठ खड़े हुए और बहुत देरतक इधर-उधर टहलते रहे। वे अपने मनोभावोंको बहुत कुछ दबाना चाहते थे पर किसी तरह भी दबा न पाते थे। अतएव, बहुत देर तक भरपूर चेष्टाकर उन्होंने अपनेको सम्हाला। इसके बाद हीरालालकी ओर देखकर बोले—"आप पर अविश्वासकर मैंने भूल की है—आशा है आप क्षमा करेंगे।"

हीरालालने कहा-"संगसे ही मनुष्य पहचाना जाता है। आपका क्या दोष है। पर बहन सुशीलाकी रक्षाके लिये ही ऐसा करना पड़ा था, दुःख है कि उन्हें बचा न सका।"

इसके बाद हीरालालने आरम्भसे लेकर अन्ततक की वल्लभ-दास सम्बन्धी सारी घटनायें कह सुनायीं। सुनते सुनते वृद्धकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोले—"निरापराध वल्लभदासका घर बर्बाद हो गया और सुशीला अब कहाँ है ?"

हीरालालने कहा-"यह तो राम ही जानता है। पर इतना मैं कह सकता हूँ कि अत्याचारोंके भयसे अपने बच्चोंके साथ किसी गाँवमें हैं।"

"वल्लभदासकी अपील हुई"—वृद्धने पूछा।

हीरालालने कहा—"अपील कौन करे, मुकद्दमा लड़कर बचा-नेमें ही तो हम दोनोंका सत्यानाश हो गया।"

आनन्दमोहन 'हूँ' कहकर कुर्सीपर बैठ गये। कुछ देरतक सोचने-के बाद बोले—"भगवानकी इच्छा। पर उसके पापका प्रायश्चित अवश्य होगा।"

हीरालाल चला गया। तुरंत ही आनन्दमोहनने टेलीफोन उठा-कर अपने वकीलको वल्लभदास सबंधी सारी घटनायें सुनायीं और आदेश दिया कि अपील कर वल्लभदासको छुड़ाओ।

अब वृद्धने फिर पत्र हाथमें उठाया। उस पत्रके साथ ही एक पत्र और भी था। वृद्धने उस पत्रको भी ध्यानसे पढ़ा। इसके बाद उसी स्थानपर रखी घण्टी जोरसे बजा दी। नौकर आ पहुँचा। बोले—"जमुनाको बुलाओ।"

जमुना आयी। आनंदमोहनने एक पत्र दिखाकर पूछा—"यह राधारमणके पास कौन ले गया था ?"

जमुना थर-थर काँपने लगी। बोली—"मेरा अपराध क्षमा हो। मालकिनने जबर्दस्ती भेजा था, पर पत्र न जाने कहाँ मेरे हाथसे गिर गया।" वह आनंदमोहनके पैरोंपर गिर पड़ी। रोती रोती क्षमा माँगने लगी। आनंदमोहनने उसी समय उसे निकाल बाहर किया, पर काफी रकम दे दी। बोले—"अभी बम्बई छोड़ कर चली जा, नहीं तो जेलखाने भेज दूँगा।"

जमुना भागी। अपने सामान लेने भी ऊपर नहीं गयी। बोली—"अभी अपने घर चली जाऊँगी।"

जमुना ऊपर न गयी। शारदा व्याकुल हो उठी। कई बार पुकारा पर नीचेसे किसीने उत्तर न दिया। दूसरी दासी उसकी खोज लेने आयी। उसे देखते ही वृद्धने बिगड़कर कहा—"जमुना निकाल दी गयी। मालकिनसे कह दो, वह अब ऊपर न जायगी।"

शारदा सुनकर अवाक् हो गई। यह क्या हुआ। उसका एक सहारा था, वह भी चला गया।

इस घटनाको भी कई दिवस हो गये। एक दिन ज्योंही आनन्दमोहन सोकर उठे त्योंहीं एक वृद्धा दासी दौड़ती हुई आयी। बोली-"बड़ा गजब हो गया ! मालकिनका पता नहीं है। सारा घर खोज-डाला, पर वे नहीं दिखाई देतीं।"

वृद्धने शान्ति पूर्वक कहा—"यह तो होना ही था, पर मैं भी अपने शत्रुको न छोड़ूँगा।"

उसी समय उन्होंने थानेमें पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टको फोन किया। यह उनका उपकृत था। दोस्त हो रहा था। तुरन्त आ पहुँचा। वृद्धने सारी घटनायें उसे बतायीं। सुशीला सम्बन्धी सारे वृत्तान्त भी बताये। यह भी कहा कि उस घटना की रिपोर्टको जा चुकी है। पर पुलिस अबतक कुछ पता न लगा सकी, कि सुशीला और वल्लभदासपर अत्याचार करनेवाला कौन है। यह क्या हो रहा है। इसके बाद और भी बहुत-सी बातें हुईं। राधारमणका भी जिक्र आया। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट आश्वासन देकर चला गया।

वृद्धने दाँत पीसते हुए कहा—"देखूँगा, राधारमणमें कितनी शक्ति है।"

बाइसवाँ परिच्छेद

प्रायश्चित्त आरम्भ।

स समय रातके बारह बज चुके थे। सब ओर सन्नाटा था। राधारमणके बागके बाहरी दरवाजेपर इस समय भी भंगकी तरंगमें बैठा मस्तराम "निर्धनके धन राम" गा रहा था। बागमें सब ओर अँधेरा था—केवल राधारमणके उसी विलास-गृहमें रोशनी हो रही थी। राधारमणके चेहरेका जखम अच्छा हो गया था, पर दाग गहरा था। उसने नकली आँख लगवा ली थी। उसकी पलंगकी बगलमें ही बैठी एक रमणी धीरे-धीरे उससे बातें कर रही थी, कि इसी समय एकाएक पुलिसके बीस जवान किसी राहसे उस बागमें जा पहुँचे। उनमें से तीन सदर-फाटकपर जा धमके। इनके साथ ही पिस्तौल-धारी एक गोरा था। क्षणभरमें ही मस्तराम बेकाबू कर दिया गया। उसके मुँहसे आवाज भी नहीं निकली। यही दशा अन्य जमादारोंकी भी हुई। इसके बाद आठ पुलिसके जवानोंके साथ स्वयं सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस उस बँगलेमें जा पहुँचे। किवाड़ भिड़काये थे, एक ही धक्केमें खुल गये।

आवाज सुनते ही राधारमण झपटकर उठ बैठा। पर खुली

पिस्तौल देखते ही जहाँका तहाँ रह गया। आगे बढ़नेकी हिम्मत न पड़ी।

इसी समय पुलिस सुपरिंटेण्डेण्टने आगे बढ़कर कहा—"राधा-रमण बाबू! मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।"

राधारमण काँप उठा। पापीका समस्त साहस गायब हो गया। बड़ी कठिनतासे बोला—"क्यों? मेरा अपराध?"

सुपरिण्टेण्डेण्टने कहा—"सेठ आनन्दमोहनकी स्त्री शारदाको आपने भगाया है और वल्लभदासको मारना, उसका खून करनेकी चेष्टा करना, उसकी स्त्री सुशीलाको नाजायज तरीकेसे कैद कर रखना, उसपर अत्याचार करना प्रभृति क्या अपराध नहीं हैं?"

राधारमणका चेहरा उतर गया। शरीर थरथराने लगा। बोला—"झूठी बातें हैं, साहब! मैंने वल्लभदासपर अत्याचार नहीं किया।"

पर तुरत ही पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टने एक फोटो निकाला, शारदाकी ओर दिखाकर बोला—"यह एक सुबूत तैयार है।" इसके बाद ही उसने शारदाको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा दी। राधारमण और शारदा दोनों ही गिरफ्तार कर लिये गये। राधारमणके हाथोंमें हथकड़ी डाल दी गयी।

इधर बाहर दूसरा ही काण्ड हो गया। मस्तरामको गिरफ्तार करते ही वह रो पड़ा। जोरसे बोल उठा—"मेरा क्या अपराध है? मुझे क्यों पकड़ते हो? उन जमादारोंको पकड़ो, वे ही अपराधी हैं। उन्होंने ही माईको सताया है।" यह कहकर उसने उन अत्याचारी

जमादारोंके नाम बता दिये। सुपरिण्टेण्डेण्टको सूचना दी गयी। उसने आकर मस्तरामसे सारा हाल पूछा। उसने अक्षर अक्षर सारी बातें सच्ची बता दीं। इकबाली गवाह बन गया। सुपरिण्टेण्डेण्टने कहा—"तुम्हें कुछ भी नहीं होगा। तुम थाने चलो।"

सब पकड़कर थाने पहुँचा दिये गये। दूसरे ही दिन मुकद्दमा आरम्भ हुआ। पहला जुर्म शारदाको भगानेका था। औरतके साथ ही वह गिरफ्तार हुआ था। परन्तु इसी समय एक गड़बड़ी मच गयी। शारदाने भरे इजलासमें कह दिया—"यह मुझे नहीं भगा लाया। मैं ही अपनी इच्छासे इसके पास आयी थी। मैं सेठ आनंदमोहनके पास नहीं रहना चाहती।"

शारदा बालिग थी। मुकद्दमा कमजोर पड़ गया। राधारमण प्रसन्न हो उठा।

परन्तु दूसरा अपराध बड़ा भयंकर था। वह था, वल्लभदासकी हत्या करनेकी चेष्टा, उसको मारना, सुशीलाको भगा ले जाना, उसपर अत्याचारकी चेष्टा करना। बड़ी जबर्दस्त गवाहियाँ हुईं। मस्तरामने सारी बातें बतायीं। किस तरह स्वयं राधारमण जमादारोंको लेकर गया था, किस तरह उसके आदेशसे वल्लभदासपर अत्याचार हुए, बागमें क्या-क्या काण्ड हुए—उसने सभी बताये। उस गाड़ीवालेकी, तथा हीरालालकी भी गवाहियाँ हुईं। अपराध प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया। मैजिस्ट्रेटने राधारमण तथा अन्य तीन जमादारों को दौरा सुपुर्द किया। उन्हें जमानतपर छुड़ानेकी बहुत कुछ चेष्टा की गयी, परन्तु कुछ न हुआ। मस्तराम छोड़ दिया गया। वह

आनन्दमोहनके यहाँ चला गया। इसके बाद असाधारण धन राशि लुटानेपर भी राधारमण अपनेको बचा न सका। उसके सारे कर्म वकीलोंकी जिरहमें सर्वसाधारणके सामने आ गये। दौरा जजने उसे नौ वर्षके सश्रम कारादण्डकी सजा दी।

इधर हीरालाल तथा रामूकी चेष्टासे आनन्दमोहनका ध्यान वल्लभदासपर आकर्षित हुआ। उन्होंने अपील की। वल्लभदास उनका दूरका रिश्तेदार था। अपीलमें साबित हो गया कि वल्लभदास की रुग्नावस्थामें राधारमणने उसे उत्तेजना दिलायी थी। वही उसको उत्तेजित करनेका कारण था—क्योंकि राधारमणके मुक़द्दमेमें सारी बातें प्रकट हो चुकी थीं, अस्पतालके डाक्टरकी भी गवाही हो चुकी थी कि राधारमण कई बार अस्पताल गया था। उसकी वल्लभदासको हत्या करनेकी दुरभि-सन्धि भी प्रत्यक्ष हो गयी थी। अतएव वल्लभदासको छूटते देर न लगी। विचारकोंने उन्हें तुरन्त छोड़ देनेकी आज्ञा दी।

शारदाने समझा था। मेरे यह कह देनेसे ही कि अपनी इच्छासे आयी हूँ, राधारमण छूट जायगा, पर वह छूट न सका। अब वह विचित्र स्थितिमें जा पड़ी। आनन्दमोहनके यहाँ जा न सकती थी और राधारमण कैदखानेकी हवा खा रहा था। अतएव, उसे बाध्य हो, एक अलग कमरा किरायेपर लेकर रहना पड़ा। धीरे-धीरे उसके सारे अलंकार खतम हो गये। इसके बाद विलासिनी अपने रूप यौवनका सौदा करने बैठी। घोर प्रायश्चित आरम्भ हुआ। कुछ दिन तो बड़ी मौजसे बीते, परन्तु इसके बादही दुर्दशा आरम्भ हुई।

उसका सारा शरीर रोग जर्जरित हो उठा। उसका सारा क्रोध राधा-रमणपर जा पड़ा। ओह: यदि उस पर दृष्टि न पड़ती, यदि उसके प्रलोभनोंमें न जा पड़ती तो आज यह दुरवस्था न होती। परन्तु अब पछतानेसे क्या होता है? पापका प्रायश्चित हुए बिना नहीं रहता।

तेइसवाँ परिच्छेद

मिलन
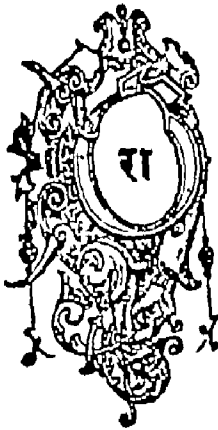
मू बम्बई चला गया है। पर अब सुशीलाके कार्यक्रममें किसी तरहकी बाधा नहीं आती। उसने उस ग्रामकी अनाथ स्त्रियों तथा विधवाओंके लिये एक वह पथ दिखा दिया है कि अब न सुशीला-को ही खाने पहनने और धनकी कमी रहती है और न उन ग्राम्य स्त्रियोंको। सभी दिनभर परि-श्रम करती हैं। बिनाई, सिलाई, जरदोजी आदि सभी तरहके काम होते हैं। ग्रामवासिनियाँ एक ऐसी सहचरी पाकर अपनेको धन्य समझती हैं और सुशीला उनके प्रति दया और ममता दिखाकर उनके हृदयपर अधिकार करती चली जाती है। अब रामू-को सामान बेचने नहीं जाना पड़ता, कुछ तो ग्राहक बँध गये और कुछ व्यापारी, और सबसे बड़ी खरीदार तो दिलारा है। रुस्तम आठवें दिन आकर जितनी चीजें तैयार होती हैं, ले जाता है। ये सभी उस डाकू सरदारकी दूकानमें बम्बईमें बिकती हैं। अतएव, सुशीला-को अब धनका अभाव नहीं है। स्वार्थमय, पाप-पूर्ण नगरके जीवन-से सुशीला यह ग्राम्य-जीवन कहीं अधिक पसन्द करती है। वहाँ उसे दुराचारके नजारे ही दिखाई देते थे। ईर्षा द्वेषका बाजार खुला

मालूम होता था, परन्तु यहाँ उसे सहृदयता मिलती है—एकके लिये दूसरा प्राण देनेको तैयार दिखाई देता है।

ग्रामके बाहर ही उस कच्चे मकानमें ही अब भी सुशीला है, परन्तु धीरे-धीरे वह सामग्रियाँ इस तरह इकट्ठी करती जा रही है मानो किसीकी अगवानीकी तैयारियाँ कर रही है। उसकी सगिनियाँ पूछती हैं तो कह देती है—"ये मेरे पतिदेवको बहुत पसन्द थीं। इसीलिये बटोर रही हूँ।" परन्तु यह किसीको भी नहीं बताती कि उसके पति कहाँ हैं! अपने भूत जीवनकी घटनायें नहीं प्रकट करती। दो चार बार पूछनेपर भी जब उत्तर नहीं मिला तो अब सबने पूछना भी छोड़ दिया है। पर जब कभी पति वियोगमें सुशीला की आँखोंमें आँसू भर आते हैं, जब कभी उसके बच्चे आकर पूछने लगते है कि पिता कहाँ हैं, तो वह कातर हो पड़ती है। कहती है-जल्दही आवेंगे; उस समय उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती है, गत जीवनके सारे चित्र उसकी आँखोंके सामने आ जाते हैं। बड़े धीरजसे उस समय सुशीला अपनेको शान्त करती है, रोते बच्चोंको समझा-बुझाकर गोदमें छिपा लेती है। उस समय उसकी सङ्गिनियाँ इतना ही समझकर चुप रह जाती हैं, कि इसमें अवश्य कोई रहस्य छिपा है जो समयपर प्रकट हो जायगा।

एक दिन तीसरे पहरका समय था। एक कमरेमें लगभग बीस स्त्रियाँ बैठी काम कर रही थी। कोई गंजी बीन रही थी, तो कोई मोजा, कोई सिलाईका काम कर रही थी। कितनी ही टोपियोंके लैस और बेल बूटे बना रही थीं। सभी अपने अपने कामोंमें लगी थीं

कि इसी समय सुशीलाका लड़का बाहरसे दौड़ता हुआ भीतर आ पहुँचा। ताली बजाता हुआ बोला—"बाबूजी आ गये।"

सुशीला चकरा गयी। यह क्या है ? क्या इतना शीघ्र तपस्या का फल मिल जायगा।

इसके क्षणभर बाद ही रामू, हीरालाल, आनन्दमोहन, वल्लभदास तथा वह मस्तराम जमादार वल्लभदासको लिये भीतर आ पहुँचे। इतने मनुष्योंको एकाएक भीतर आते देख, सभी स्त्रियाँ काम छोड़कर उठ खड़ी हुईं। सुशीला तो आश्चर्यसे काठकी मूर्ति हो गयी। उसे अपनी आँखोंपर भरोसा न होता था। इसके बाद एकाएक मानों होशमें आकर पगलीकी तरह आगेकी ओर दौड़ पड़ी और "प्राणनाथ!" कहती हुई वल्लभदासके चरणोंपर गिर पड़ी।

वल्लभदासने हाथ पकड़कर उसे उठाया। पर इस आनन्दातिरेकने सुशीलाकी सुध-बुध गायब कर दी थी, उसको ज्ञान नहीं था, वह वल्लभदासकी बाहोंमें बेहोश थी। सुशीलाकी यह अवस्था देख, सबकी आँखोंमें आँसू आ गये। वृद्ध आनन्दमोहन चिल्ला उठे —"ऐसा न हो कि इसी आनन्दमें इसके प्राण निकल जायें।"

वल्लभदास तथा रामूने उसी चटाईपर जिसपर बैठकर सब स्त्रियाँ काम कर रही थीं, सुशीलाको लेटा दिया। रामूने उसके मस्तक और आँखोंपर पानीका छींटा दिया। कोई पंखेसे हवा करने लगा। थोड़ी देरकी सुश्रूषाके बाद सुशीलाकी बेहोशी दूर हुई। पहला शब्द जो उसके मुँहसे निकला, था—"आ गये, दुखियाकी सुध लेने!"

इसी समय मस्तरामने कहा—"निर्धनके धन राम! माता!

अब उठो। पापीको सजा मिल गयी। अब दुःखके दिन भी गये।"

सुशीला उठ बैठी। अपने चारों ओर आश्चर्यसे देखने लगी। इसके बाद मस्तरामकी ओर देखकर बोल उठी—"इसी महात्माने मेरा जीवन बचाया था। ओह! वह रात.."

मस्तराम बोला—"माता! मौका नहीं था नहीं तो...शत्रुको तो .."

इसी समय आनंदमोहनने आगे बढ़कर कहा—"बेटी! राधा-रमणने मुझे भी अन्धा बना दिया था और तेरी सखीने पागल! नहीं तो क्या तेरी यह दुर्दशा होने पाती! पर धन्य उपकारी बंधु रामू! इतना कह वृद्धने अपनी मान-मर्यादा का विचार त्याग रामूको अपने गले लगा लिया। बोले—"वास्तवमें इसने मेरी जान बचाई; मेरा कुल कलंकित होनेसे बचाया, मुझे तेरी सहेलीका वास्तविक रूप दिखा दिया और इसीने पद-पदपर वल्लभदासकी रक्षा की।"

सुशीला चुप हो रही। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। वल्लभदास सर झुकाये एक ओर बैठे थे। आनदमोहनने एक ठण्ढी साँस लेकर फिर कहा—"पर बेटी सुशीला! तू धन्य है, तेरा साहस धन्य है। यह सब तेरे सतीत्वका परिणाम, तेरे सत्यका बल है।"

सुशीलाने हाथ जोड़कर आकाशकी ओर देखा। इसके बाद नम्र स्वरमें बोली—"माताका उपदेश और भगवानकी दया।"

पर इसी समय एक विचित्र घटना और भी घटी। एकाएक

एक मोटरगाड़ी दरवाजेपर आ लगी। रुस्तम उसपरसे कूदकर अलग जा खड़ा हुआ और डाकू सरदार कासिम तथा दिलाराने उस मकानमें प्रवेश किया। दिलाराने इस समय पर्दा त्याग दिया। वह अपूर्व रूप-राशि देखकर सभी अवाक् हो गये। दिलारा सुशीलाके पास चली गयी। कासिम एक ओर खड़ा हो गया। इसके बाद सुशीलाकी ओर देखती हुई बोली—"मुझे बम्बईमें ही खबर मिल गयी थी। क्या अपनी बहनकी इस खुशकिस्मतीके वक्त मैं अलग रह सकती थी। मैं भी आगयी। आज सचमुच बड़ी खुशीका दिन है और बहन सुशीला! सचमुच यह तेरे सत्य और तपस्याका ही नतीजा है।"

इतना कह, उसने अपने गलेसे एक मोतियोंकी माला निकाल सुशीलाके गलेमें डाल दी और बोली—"अपनी बहनका यह नाचीज तोहफा शायद इस वक्त तुम इनकार न करोगी।"

सभी इस रूपवतीकी कार्रवाइयोंपर अवाक थे और आश्चर्यसे उसकी ओर देख रहे थे! सुशीलाने संक्षेपमें सारी घटनाएँ बताकर कासिम और दिलाराका परिचय दिया। इन विचित्र दम्पतियोंका यह परिवर्त्तन सुनकर सभी आश्चर्य-चकित रह गये।

इसी समय आनदमोहनने कहा—"सुशीला! तुम्हें मैं अपनी बेटी स्वीकार कर चुका हूँ। अतएव, आज मैं जो कुछ किया चाहता हूँ, उससे आशा है, तुम इनकार न करोगी। मैंने अपने स्टेटसे दसहजार रुपये रामूको, दस हजार हीरालालको देकर बाकी सब रक़म तुम्हें दी। आजसे तुम मेरी पुत्री हुई और वल्लभदास,

जो होना था सो गया, आजसे तुम्हे मेरा कारबार देखना होगा। अब मेरा सब कुछ तुम्हारा है।"

अब सुशीला हाथ जोड़कर आगे बढ़ी। बोली—"आपकी कृपासे ही मैं अपने पतिदेवको इतना जल्द पा गयी हूँ। इसी ऋणसे मैं उऋण नहीं हो सकती। अब दया करें। और मैं तो अब शहरमें रहना भी नही चाहती। मेरी ये ग्राम्य-संगिनियाँ ल्टुद सुख पहुँचा रही हैं, मैं इन्हे नहीं छोड़ना चाहती। साथ ही अपनी सखी शारदाकी यह सम्पत्ति मैं क्यों लूँगी? यह नहीं हो सकता।"

आनंदमोहनका चेहरा उतर गया, माथा नीचा हो गया। बड़े कष्टसे बोले—"बेटी सुशीला! उसका नाम न लो! वह मुझे त्यागकर चली गयी।"

सुशीला आश्चर्यसे बोल उठी—"त्यागकर चली गयी!"

आनंदमोहनने कहा—"उसकी भूल नहीं थी, सुशीला! मेरी ही भूल थी, जो उससे इस वृद्धावस्थामें विवाह किया और इसका ही प्रायश्चित्त अपमान तथा आत्मग्लानि द्वारा हो रहा है।"

इतना कहते कहते वृद्धकी आँखोंमें आँसू भर आये। इसके बाद ही एकाएक तीव्र और कर्कश स्वरमें क्रोधसे बोल उठे—"इसी रामारमणने मेरे घरका सत्यानाश किया। पर रामूने मुझे बचा दिया, नहीं तो प्राण भी न बचते। मैं अवश्य मारा जाता।"

सुशीलाको इन बातोंकी कोई खबर न थी। रामूने सारा हाल बताया। सुनकर सुशीला बोली—"बहुत दिन पहले उन दोनोंको मैंने महालक्ष्मीपर देखा था। उसी समय राधारमणसे सावधान

रहनेके लिये, उसे समझा भी दिया था। अब कहाँ है ?"

रामूने कहा—"इनके यहाँसे भागकर राधारमणके बागमें छिपी थी। वहांसे पुलिसने छुडाया, पर इजलासमें उसने इनके साथ रहनेसे इनकार कर दिया। अब न जाने कहाँ है—इन्होंने त्याग दिया। आपपर अत्याचार, बाबू तथा जमादारपर वार और मार, हत्याकी चेष्टा आदि अपराधोंमें राधारमणको नौ वर्षकी सजा हुई।"

सुशीलाने कहा—"बहुत अधिक सजा हुई। पर यह सम्पत्ति मैं नहीं लेना चाहती।"

इसी समय हीरालालने आगे बढ़कर सुशीलाके पैर छूते हुए कहा—"आशा है भाईका अपराध अब क्षमा होगा।"

सुशीलाने बडे प्रेमसे उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—"मैं भ्रममें थी भाई! तुम मेरे सच्चे भाई हो। मुझे क्षमा करना।"

सुशीलाने आनदमोहनकी सम्पत्ति लेनेसे बहुत कुछ इनकार किया अपने उद्योग-बलसे उपार्जित द्रव्य और वहाँ होनेवाले कार्योंको बताते हुए उसने बहुत सी आपत्तियाँ कीं। उसकी यह कार्यपटुता देख वल्लभदासका हृदय अपने व्यवहारोंके लिये परिताप्से दग्ध होने लगा, सबने मुक्त-कण्ठसे उसकी प्रशसा की, पर आनंद-मोहनने किसी तरह न माना। उन्होंने दानपत्र सुशीलाको देते हुए कहा—"दान की हुई चीज़ लौटाई नहीं जा सकती। तुम दोनोंके हाथमें रहनेसे इसका सद्व्यय होगा।"

बहुत कुछ इन्कार करनेपर भी दूसरे ही दिन आनंदमोहन सबको साथ लेकर बम्बई चले गये।

उपसंहार ।

नौ-वर्ष बाद ! एक दिन सवेरे ही अखबारवाला चिल्लाता जा रहा था । स्त्री-द्वारा खून ! जेलसे छूटते ही खून ! !

वल्लभदासने अखबार मँगवाया । उसमें राधारमणके परिचयके साथ ही लिखा था—जिस दिन वे जेलसे छूटकर घर आये, उसी दिन शारदा नामकी एक स्त्रीने उनके बागमें घुसकर छुरेसे उनका खून किया । इजहारमें उसने अदालतमें जो बातें बताई हैं—वे बड़ी भयंकर हैं, उसने कहा कि राधारमणने ही उसे दुराचारमें प्रवेश करा, उसकी दुर्दशा कराई है । इसीकी प्रतिहिंसामें उसने उनका प्राण लिया । शारदाको फाँसीकी सजा हो गयी ।

आनंदमोहनने भी पढ़ा । अखबार उलटकर रख दिया । बोले—'पापका प्रायश्चित्त तो होता ही है ।"